।। वेदाञ्जलि ।।

यजुर्वेद के पाँच अध्यायों की
वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचारण



भाषानुवादक :

डा० (कर्नल) ज्ञान चन्द्र

प्रकाशक :

देव वाणी प्रकाशन

आगरा, भारत

पुस्तक प्राप्ति के स्थान :

1. डा० (कर्नल) ज्ञान चन्द्र

41, अवधपुरी कालोनी, शाहगंज

आगरा 282010, उत्तर प्रदेश, भारत (INDIA)

टे० फोन न० - (0562) 2213145 ; ~~3293774~~

09897190452

2. Sh. Vikram Verma

33, Tomahawk Drive

North Borough, MA - 01532

USA.

Tel No:- (001) 508-466-8160

978-602-6239

3. Dr. Vishal Verma

113, Humber Road, Poventry, CV-3, 1 Nu

England (UK)

Tel No. 00447816520605

कम्प्यूटर :

माँ गायत्री ग्राफिक्स

47, बीधा नगर शाहगंज, बोदला

रोड, आगरा

मो. 9258577880

मुद्रक :

देव वाणी प्रकाशन

आगरा, भारत

मूल्य : ₹ 100/- ; **$ 2.0 ; £ 1.5 + Postal Charges**

वेदाञ्जलि

वेदों की वैज्ञानिक विचारणा

प्रस्तावना

वेदों के बिषय में बात करें तो इनकी रचना कब हुई? कैसे हुई ? किसने की ? इस पर विभिन्नमत हैं। इन विवादों में न जाते हुए मैं केवल इतना ही कहूँगा कि ये हमारी संस्कृति की ऐसी अमूल्य धरोहर हैं जिनके शाश्वत ज्ञान ने आर्यावर्त में रहने वाले हमारे पूर्वज आर्यो को बहुत लम्बे समय तक सम्माननीय और श्रेष्ठ कहलाने का गौरव दिलवाया। जब सारा संसार अज्ञान और बर्बरता के अन्धकार में डूबा हुआ था, तब आर्यो के ज्ञान और विज्ञान की दुन्दुभि सारे संसार मे फैली हुई थी।

वेदों के निर्माण का जो भी समय रहा हो, इतना निश्चित है कि शायद वह आर्यो का स्वर्ण युग अवश्य रहा होगा। तभी इतने उच्च आदर्शो के विचार पैदा हुए जिनको हमारे पारंगत ऋषियों ने परम प्रभु की प्रेरणा से इतनी सुन्दर ऋचाओं के रूप में कल्पना और रचना की। श्रुति के रूप में इनकों हजारों साल तक केवल याददाश्त के सहारे पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे तक बढ़ाया और बाद मे लिपिबद्ध किया। बेशक वेदों में जो अनुपम ज्ञान का भण्डार है, वह शाश्वत है, जिसमें किसी कि प्रति कोई रोष नहीं है। है तो बस मानव मात्र को एक अच्छा इंसान बनाने का आदेश।

इसी ज्ञान को पाकर भारतवर्ष में अनेकों महामानव पैदा हुए जिनमें प्रातः स्मरणीय दो नाम हैं मर्यादापुरूषोत्तम राजा रामचन्द्र और योगीराज श्री कृष्ण चन्द्र। राजा रामचन्द्र जी के आदर्श और पवित्र कार्यो

ने उन्हें पूरे दक्षिण-पूर्व एशिया में इतना कीर्तिमान किया कि आजतक उनका नाम बड़े आदर से याद किया जाता है। इसीतरह योगिराज कृष्ण, जिनकी विद्वत्ता और बुद्धिमत्ता का सानी ना उनके समय में दूसरा था और ना आजतक कोई पैदा हुआ। उनके द्वारा दिया गया गीता का ज्ञान हर भारतीय बड़ी श्रद्धा से आज तक पढ़ता चला आया है। इसके कुछ श्लोक तो ज्यों की त्यों वेदों की ऋचाऐं हैं।

वेदों की रचना के समय आर्यों की भाषा वैदिक संस्कृत थी। जिन ऋषियों ने इन ऋचाओं को बनाया वे उस काल के प्रकाण्ड विद्वान थे। उन्होनें कम से कम शब्दों का स्तैमाल करते हुए ऋचाओं को इस रूप में बनाया कि वे मौखिक रूप से आसानी से याद की जा सकें। इनका हर शब्द कुछ ना कुछ अलग बोलता है। फिर उन ऋषियों ने इनको खूबसूरत बनाने के लिए अलंकारों से भर दिया। रूपक और प्रतीकों का भरपूर प्रयोग किया। यह उन पारंगत ऋषियों का कमाल ही था। हाँ इतना अवश्य है कि इन ऋचाओं के मर्म को हजारों साल तक सही रूप में जाना जाता रहा।

बड़े दु: ख की बात है कि हमारी इस भारत भूमि पर इतने बेशुमार आक्रान्ताओं ने आक्रमण किए कि जिसकी कोई दूसरी मिसाल पूरी दुनियाँ में नहीं है। यह सिलसिला आर्यों के समय में ही शुरू हो गया था।

सम्भवत: उस काल की भौगोलिक स्थिति इस तरह की रही हों कि लंका,अफ्रीका के पूर्वीतट (मिस्र, इथियोपिया, सोमालिया, केन्या, सूडान,तंजानियाँ) और अरब प्रायद्वीप के कुछ भाग (यमन, ओमान और मैसोपोटामियाँ) अधिक निकट होने से वहाँ की बर्बर सभ्यताऐं- राक्षस, दैत्य, दानव इत्यादि के रूप में दक्षिण की दिशा से आते रहे हों और आर्यों

पर आक्रमण करते रहें हों। आर्यों ने संगठित होकर एक लम्बे अन्तराल तक इनका सफलता पूर्वक प्रतिकार किया और इनकों समाप्त भी किया। परन्तु जब वे आपसी विवादों में पड़कर अलग और कमजोर हो गए और छोटे छोटे राज्यों में बँट गए तो इन आक्रान्ताओं को रोक पाना कठिन हो गया।

इतिहास गवाह है कि श्री कृष्ण जी के समय में कालयवन नाम का आक्रान्ता अपनी विशाल सेना लेकर उत्तर पश्चिम की ओर से जब घुस आया तो उसके आक्रमण को रोकने की सामर्थ्य किसी भी आर्य राजा की नहीं थी। वह उस काल की प्रसिद्व नगरी मथुरा तक सीधा चला आया। यह तो श्री कृष्ण चन्द्र जी की सूझबूझ थी जो उन्होंने यादव सेना द्वारा उसके साथ छद्म युद्ध की नीति को अपना कर उसका विनाश किया। भारत की धन सम्पदा की प्रसिद्धि सोने की चिड़िया के रूप में जब जब बाहर के देशों में फैली, आक्रमणकारी लुटेरे पंक्तिबद्ध होकर लहरों की तरह आते चले गए। मध्य एशिया और योरोप के ये बर्बर और दुर्दान्त लुटेरे-पारथियन, यूनानी, कुषाण, शक, हूण, अरब, तुर्क, तातार, मंगोल और बाद में अंग्रेज और पुर्तगाली ने आकर बे इन्तहा लूटपाट की। इनमें से कुछ जैसे गुलाम, खिलजी, तुगलक, सैयद, लोदी और मुगल आक्रमणकारी लुटेरे तो वंशों के रूप में यहाँ आकर बस ही गए और आहिस्ता आहिस्ता पूरे भारत में फैल गए। इन आक्रान्ताओं ने बर्बादी का जो ताण्डव यहाँ खेला वह बेमिसाल है। इन लुटेरों ने भयंकर कत्लेआम किए, धन सम्पत्ति को जी भर कर लूटा, साहित्य और सांस्कृतिक स्थलों को नष्ट कर डाला। दस्तावेज गवाह हैं कि तक्षशिला और नालंदा के विश्वविख्यात विद्यालयों को उजाड़ कर उनके ग्रन्थागारों में रखी

हस्तलिखित पुस्तकों के पहाड़ जैसे ढ़ेरों में जब आग लगाई गई तो उनसे 3-3 महीने तक धूंऐ की लपटें निकलती देखी गई। सच पूछा जाए तो आर्यों का सारा इतिहास, साहित्य और सांस्कृतिक धरोहर नष्ट कर दिये गये। अब जो इतिहास उपलब्ध है वह इन आक्रान्ताओं द्वारा ही लिखा हुआ आधा सच है। या फिर हैं तो केवल किंवदन्तियाँ।

इस पुरातन इतिहास और साहित्य को विभिन्न कालों में तत्कालीन विद्वानों ने पुराणों के रूप में लिखा और आने वाली पीढ़ियों को विरासत के रूप में सोंपा। एक तो इस अन्तराल में संस्कृत भाषा का रूप बदल चुका था, अतः जो ग्रन्थ उस समय उपलब्ध थे उनके मर्म को ये विद्वान समझ नहीं पाए और उनके भाष्य करते समय अर्थ की जगह अनर्थ कर बैठे। दूसरा किंवदन्तियों के आधार पर लिखे गए पुराणों में जाने-अनजाने इतनी विसंगतियाँ हो गई कि इनकी ऐतिहासिक प्रामाणिकता नगण्य हो गई। कुछ स्वार्थी तत्वों ने इतने हास्यास्पद, बेहूदे और अभद्र ग्रन्थ जैसे लिङ्ग पुराण, अल्लोपनिषद लिख डाले जिनको भद्र समाज और सभ्य विद्वानों के सामने प्रस्तुत करना भी शर्मिन्दगी देता है।

पिछले तीन हजार सालों से हम पौराणिक कथाओं से इतने प्रभावित होते रहे है कि इनसे बाहर हट कर हम कुछ भी सोच ही नहीं पाते। ऐसे अन्धविश्वास भरे माहौल में जब वेदों के भाष्य लिखे गए तो ऋचाओं के अर्थ ही बदल गए। अधिकांश भाष्य इसी समय की देन हैं। जो या तो पूर्वाग्रह से ग्रस्त होकर अथवा अन्धभक्ति में लिखे गए। लोग वेद मन्त्रों के मर्म मूलकर शब्दों अथवा व्याकरण की बारीकियों में उलझ कर रह गए।

आचार्य यास्क ने अपने ग्रन्थ 'निरुक्त' में बताया है:- स्थाणुरयं भारहारः किलाभूधीत्य वेंद न विजानाति योऽर्थम्। योऽर्थज्ञ इत्सकलं

भद्रमश्नुते नाकमेति ज्ञान विभूति पाप्मा।। जो मनुष्य वेद मन्त्रों को पढ़कर उनके सही अर्थो को नही जानता वह फल-फूलों से लदे हुए केवल भार उठाने वाले उस रूंड वृक्ष के समान है जो कि फल-फूलों के महत्व को नहीं जानता और केवल उनका भार वहन कर रहा है। जो मनुष्य मन्त्रों के अर्थ जानता है वह पवित्रात्मा, संसार के सम्पूर्ण कल्याण आनन्द एवं रहस्यों को प्राप्त करता है।

मैं महर्षि दयानन्द सरस्वती का अगाध सम्मान करता हूँ, जिन्होने सत्य की खोज और सच्चे गुरू की तलाश में बेहिसाब कष्ट उठाए और गुरू विरजानन्द सरस्वती से शिक्षा प्राप्त कर गुरू दक्षिणा में दिए वचन-सत्य का प्रचार करने की जो शपथ ली उसे अनेकों विरोधों और कष्टों का सामना करते हुए भी आजीवन निभाया और अन्त में इसी उद्देश्य के लिए अपनी प्राण आहुति भी देदी। यह उनका ही आशीर्वाद है जो आज हम अपनी आँखें खोल कर देख पा रहे हैं। परन्तु दुर्भाग्य ही कहूँगा कि उनके मानसपुत्र उनकी इस विरासत को सही रूप में आगे नहीं बढ़ा सके।

अब मैं असली मुद्दे पर लौटता हूँ। यमक और श्लेषालंकार में एक ही शब्द के अनेक अर्थ हो जाते हैं। उदाहरण के तौर परः- (1) हरि आए हरि लेन को, हरि बैठे हरि पास। हरि कूदे हरि में गए, तब हरि गए निरास।। अर्थात् सर्प मेंढ़क को पकड़ने के लिए आया मेंढ़क तालाब के पास बैठा था। सर्प को देख मेंढ़क पानी में कूद गया, और सर्प निराश होकर चला गया।। (2) सारंग ने सारंग गह्यो, सारंग बोल्यो आय। जो मुख से सारंग कहै, सारंग निकस्यो जाय।। अर्थात् मोर ने सर्प को चोंच में पकड़ लिया, तभी बादल गरजने लगा। अब यदि मोर उमंग में भर आवाज़

निकालने लगे, तो सर्प छूट जाऐगा।। (3) सारंग नैनी, सारंग बैनी, ले चली सारंग सारंग को। हर-हार-अहार के बीच पर्यौ, दुबकाबति सारंग सारंग को।। अर्थात् मृग नयनी, कोकिल बैनी सुन्दरी दीपक को लेजा रही है। तभी आए झंझावात से बचाने सुन्दरी दीपक को अपने आँचल से छिपा रही है।।

उसी तरह अंगरेजी में एक कहावत है। : IT IS RAINING CATS AND DOGS. जिसका शाब्दिक अर्थ होता है कि कुत्ते बिल्ली की बरसात हो रही है। परन्तु इसका मर्म है- धूंआँधार बारिश हो रही है।

अब आपकों बता दूँ कि ठीक इसी तरह वेदों की सारी ऋचाऐं अलंकारिक भाषा में हैं। इनमें लिखे अनेकों '**शब्द**' स्थान विशेष पर अलग अर्थ देते है। यानि कि सीधा अर्थ कुछ और है और उसका मर्म बिल्कुल अलग। यही तो कमाल है। स्वामी दयानन्द जी ने अपने प्रसिद्व ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' के पहले ही अध्याय में यह बात साफ की थी कि यदि कोई व्यक्ति खाना खाने बैठा है और '**सैन्धव**' मांगता है तो उसका अर्थ '**नमक**' और यदि वही व्यक्ति कहीं जाने के लिए तैयार होकर खड़ा है और '**सैन्धव**' मांगता है तो उसका अर्थ '**घोड़ा**' समझना चाहिए।

वेद मन्त्रों के दृष्टा ऋषियों ने प्रभु को सूर्य, अग्नि, इन्द्र, ब्रह्मा, विष्णु, महेश इत्यादि 100 से अधिक नामों से क्यों सम्बोधित किया? जब कि वे जानते थे कि प्रभु का सर्वोत्तम नाम '**ओउम्**' है। वे भी प्रभु को कुरान की तरह अल्लाह और बाइबिल की तरह गौड की भाँति हर जगह '**ओउम्**' शब्द से सम्बोधित कर सकते थे। उन ऋषियों को ऐसा क्या लगा कि प्रभु को इतने सारे नामों से सम्बोधित कर डाला। यही अन्तर है एक

व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य और एक वैज्ञानिक में। जहाँ प्रथम में दो वर्ग के विद्वान हर बात का उत्तर पुस्तकों में ढूँढते हैं वहाँ वैज्ञानिक इनके तथ्य और सत्य को आंखें खोल कर चारों और देखते हुए खोजता है। आजतक जितने भी भाष्य हुए वे इन शब्दों के मर्म पहचान ही ना सके। क्षमा कीजिएगा मैने भी अपनी पुस्तक में वेद मन्त्रों के जो अर्थ किए हैं उनमें कहीं भी अनावश्यक रूप से विज्ञान खोजने की कोशिश नहीं की है। हाँ अलबत्ता एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण रख कर सत्य की खोज अवश्य की है।

यहाँ मैं एक घटना को प्रस्तुत करना चाहता हूँ: आर्य ऋषि वाजश्रवा के कई शिष्य थे, जिनमें धर्मद और विराध भी थे। एक बार धर्मद और विराध में विवाद छिड़ गया। दोनों अपने को अधिक श्रद्धावान सिद्ध करना चाहते थे। जब विवाद बहुत बढ़ गया, तो दोनों गुरू के समीप गए। उन्होंने अपनी समस्या गुरु के सामने रखी और निर्णय देने का आग्रह किया। गुरु ने कहा, 'अपनी-अपनी श्रद्धा की व्याख्या करो, तब निर्णय देंगे।' धर्मद बोला, 'देव, आश्रम जीवन में आपकी प्रत्येक बात मानी। उचित-अनुचित का भी ध्यान नहीं किया। आपकी किसी भी आज्ञा को तर्क या विवेक से परखने का प्रयास नहीं किया। क्या इससे बढ़कर भी कोई श्रद्धा हो सकती है? गुरूदेव मुस्कराए, अब उन्होंने विराध को संकेत किया। विराध बोला, 'भगवन्! मुझे ज्ञान की प्रबल आकांक्षा है, अतएव आप पर श्रद्धा भी अगाध है, पर साथ ही यह भी परखना आवश्यक समझता हूं कि जो कुछ कहा या बताया जाता है, वह सत्य से परे तो नहीं है। सत्य का मूल्य अधिक है, इसलिए सत्य पाने के लिए सर्वस्व छोड़ने को तैयार रहता हूं।' गुरु ने कहा, 'धर्मद! सत्य को परखकर धारण की जाने वाली श्रद्धा ही श्रेष्ठ है।'

सैन्य चिकित्सा कोर से अवकाश प्राप्ति के बाद कई विद्वानों के लिखे हुए वेदों के भाष्य पढ़े। सच पूछो तो किसी ने भी दिल और दिमाग को पूरी तरह से नहीं छुआ। किसी में अर्थ की जगह अनर्थ और अनर्गल कहानियाँ गढ़ी हुई मिलीं तो कहीं विद्वान अपनी विद्वत्ता दिखाने के चक्कर में इतना आगे बढ़ गया कि चर्चा के विषय को छोड़ 'मुख्य मुद्दे' से ही भटक गया। एक वैज्ञानिक होने के नाते मैने पाँच 'क' क्या, क्यों, कब, कैसे और कहाँ के तराजू पर तौल कर गहन अध्ययन किया। व्याकरण की बारीकियों में ना उलझते हुए मैं इन ऋचाओं के मर्म को पहचानने की कोशिशों में जुट गया। मेरा मन बार बार कहता था कि इतने विद्वान आप्त ऋषियों ने इन ऋचाओं की रचना यों ही व्यर्थ में तो नहीं की होगी कोई तो खास बात है जो हम समझ नहीं पा रहे हैं। विश्वास मानिए कि मैं इनके मर्मों तक पहुँचने के लिए, न जाने कितनी रातें सो ही न सका। और जब मर्म समझ में आया तो आश्चर्य की सीमा ही न रही।

आज आप को बताता हूँ वह जादू की चाबी जिसका स्तैमाल करने पर वेदों की ऋचाओं के सम्यक अर्थ उन गुप्त तालों की तरह खुलते चले जाते है जिनकों खोजना और खोलना कठिन ही नही असम्भव समझा जाता है। जिन आर्यों की सु-संस्कृति को हम विभिन्न स्थानों और पुस्तकों में ढूँढते फिरते हैं उस दर्शन का अथाह भण्डार तो यहीं इन वेदों की ऋचाओं में भरा पड़ा है।

यह जादू की चाबी है- **वेदों में आने वाले बहुत सारे शब्द जैसे कि सूर्य, अग्नि, इन्द्र, पृथ्वी, आकाश, वरुण, वायु, सोम, ब्रह्मा, विष्णु, महेश इत्यादि को आप केवल मात्र शब्द मानें और इनका प्रयोग निश्छल भाव से इनके गुणों के आधार पर विषय वार्ता के**

के अनुरूप करें। जहाँ प्रभु का विषय हो प्रभु के लिए, जहाँ इंसान का विषय हो इंसान के लिए और जहाँ प्रकृति अथवा विज्ञान का विषय हो उनके लिए इन शब्दों को प्रयोग में लाऐं। फिर देखें इन शब्दों का चमत्कार। स्तभ्भित रह जाऐंगे आप। सम्भवतः वेदों के दृष्टाओं का भी यही आशय रहा हो। तभी तो इन शब्दों को प्रसंग विशेष पर खास तौर से चुना अन्यथा इनका महत्व केवल भौतिक वस्तुओं, स्थान और व्यक्ति विशेष के लिए ही रह जाता। **यही मर्म है।**

तनिक सोचिए यदि हमारा सूर्य नहीं होता–तो क्या होता? न हम होते, न आप न ही स्थावर और जंगम जगत। ये पहाड़, झरने, नदियों की कलकल, चिड़ियों का कलरव और लहलहाती फसलें, यह धरती, नौग्रह और उनके चन्द्रमा कुछ भी तो नहीं होते। होता केवल शून्य और घना अन्धकार वह भी जीवन रहित। अब इसीलिए इस 'सूर्य' शब्द को संसार के रचयिता, पालन हारा जीवन का आधार मानते हुए प्रभु के लिए प्रयोग कर लिया तो इसमें क्या आश्चर्य। फिर यही तो है ऊष्मा का भण्डार, अंधेरे में उजाला फैलाने वाला, इसलिए देवता मानलिया। ठीक इन्हीं अर्थों में यही शब्द पुण्यात्मा मानव और प्रकृति के लिए प्रयोग में ले लिया। अग्नि का मर्म है अंधकार में रोशनी फैलाने वाला, ऊष्मा और ऊर्जा का स्रोत, संसार चक्र की प्रगति का सूत्र, आगे ले जाने वाला, ऊपर उठाने वाला और यदि हदें पार कर दे तो दावानल और ज्वाला मुखी भी। पृथ्वी का मर्म है, प्राणिमात्र के जीवन का आधार, अमृत पिलाने वाली, ममता भरी गोद में खिलाने वाली, कितना भी बुरा करने पर जैसे खोदने तोड़ने, काटने पर भी हमेशा कुछ न कुछ देते रहने वाली माँ और आवश्यकता होने पर दृढ़ता और स्थिरता का प्रतीक भी। आकाश का मर्म है, विशाल, विस्तृत, गहरा,

गम्भीर, पिता के समान छत्र छाया देने वाला बाहरी चोटों से बचाने वाला, उदार हृदय इत्यादि अनेक सन्दर्भों में इस्तेमाल किया गया शब्द। इसी तरह यज्ञ का अर्थ है श्रेष्ठतम कर्म करना यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म। स्वामी जगदीश्वरानन्द के अनुसार प्रभु के प्रति समर्पण, हवन, माता-पिता की सेवा, गुरूजनों का सम्मान, ऋषि समान अतिथियों का सत्कार, बराबर वालों के साथ सद् व्यवहार एवं छोटों को सही मार्ग दर्शन यज्ञ की श्रेणी में ही आता है। मैं इन के साथ निस्वार्थ रूप से किए गए कल्याणकारी और परोपकारी कार्य, असहाय बीमार और बुजुर्गों की सेवा सुश्रुषा को और जोड़कर देखता हूँ।

अब आपको उदाहरण के तौर पर ऋगवेद के पहले मण्डल का पहला मन्त्र प्रस्तुत करता हूँ :-

अग्नि मीड़े पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्न धातमम्।। ऋ० म०1 सू० 1 अ०1 मन्त्र 1

(अग्निम् ईड़े) परमपिता परमेश्वर की स्तुति करते हुए, उनकी ही कृपा से (पुर:हितं) मानव मात्र के हित में (यज्ञस्य) श्रेष्ठतम कार्यो को करने के लिए (देवम् ऋत्विजम) देव तुल्य ऋषियों के माध्यम से (होतारं) यह यज्ञ के समान कल्याणकारी ऋगवेद (रत्न धातमम्) अर्थात् रत्न से भरा पात्र पेश किया जाता है।।

इस मन्त्र का अपने स्थान पर कितना सुन्दर भाव है।

शब्दार्थ-ईड = स्तुति करना, कृपा करना। पुर: = शहर, गाँव, जहाँ इंसान और अन्य प्राणी निवास करते हों। ऋत्विज = यज्ञ अथवा कल्याण कारी कार्य करने वाले चार ऋषिजन-विद्वान। होता, उद्गाता,

उध्वर्यु और ब्रह्मा। रत्न = यहाँ वेदों की ऋचाओं को रत्न बताया गया है। धातमम्- पात्र, कटोरा।

इसी तरह दूसरा उदाहरण यजुर्वेद के तीसरे अध्याय से प्रस्तुत है:-

अग्नि र्ज्योति ज्योति रग्नि स्वाहा। सूर्यो ज्योति र्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा।

अग्नि र्वर्चो ज्योति र्वर्चः स्वाहा। सूर्यो वर्चो ज्योति र्वर्चः स्वाहा।

ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा।। यजु0 अ0 3 म0 9

यह अपने आप में पाँच मन्त्रों का विचित्र संगम है। चमत्कारिक, अद्भुत और रहस्यपूर्ण। 'डालडा' शब्द की तरह इनके तीन मन्त्र तो ऐसे विचित्र हैं कि जिनको चाहे आगे से पढ़ो या पीछे से एक जैसे ही हैं। चमत्कारिक इतने कि महर्षि प्रजापति ने केवल चार शब्दों- अग्नि, सूर्य, ज्योति और वर्च के उलट-फेर में बेहद गम्भीर बातें प्रस्तुत कर दीं। ऋषिवर ने इनकी रचना पाँच चक्रों वाले ऐसे रहस्यपूर्ण चक्रव्यूह के रूप में कर दी कि इनको सामान्य रूप से देखो तो अर्थ एकदम बेकार सा, तथ्य हीन नज़र आता है। परन्तु जब अन्दर गहराई से झांक कर देखो तब अद्भुत और आश्चर्यजनक दिखाई देता है। दुख की बात है कि अधिकांश भाष्यकार तो ऋषि का मन्तव्य समझ ही न पाए और इनकी पहली परिधि भी लांध नहीं सके। उनके द्वारा किए अर्थ एकदम सतही और बेतुके हैं जो इस प्रकार हैं- अग्नि ज्योतिर्मय है, ज्योति ही अग्नि का रूप है, इसलिए स्वाहा। सूर्य ज्योतिर्मय है, ज्योति ही सूर्य रूप है, इसलिए स्वाहा। अग्नि तेजोमय है, ज्योति तेजोमय है, इसलिए स्वाहा। सूर्य तेजोमय है, ज्योति ही उसका तेज है, इसलिए स्वाहा। ज्योति सूर्य का रूप है, सूर्य ज्योतिर्मय है, इसलिए स्वाहा। ऐसे अर्थ पढ़ कर ही विदेशी विद्वानों ने निष्कर्ष निकाला

कि आर्य लोग अग्नि और सूर्य की पूजा करते थे।

अब मैं आपको इनके मर्म तक लेकर चलता हूँ। दर असल मे ये पाँच प्रतिज्ञाऐं हैं जिनको हम यज्ञवेदी के सामने बैठ कर प्रभु को साक्ष्य मानते हुए आहुति (समर्पण) के रूप में लेते हैं। इन मन्त्रों के बिना कोई भी यज्ञ पूरा नहीं होता है।

1. (अग्निः) परम प्रभु आपकी (ज्योतिः) पहली ज्योति 'सत्य' है (ज्योतिः) मैं सत्य का पालन करता रहूँगा (अग्निः) इस मशाल को सर्वोपरि रखूँगा, सारे जीवन पर्यन्त लेकर चलूँगा और अगली पीढ़ियों को सोंप जाऊँगा, (स्वाहा) सभी के हितों का ध्यान रखूँगा।

2. (सूर्यो) प्रभु आपकी (ज्योतिः) दूसरी ज्योति 'ज्ञान-विज्ञान' है (ज्योतिः) मैं जो भी ज्ञान और विज्ञान अर्जित करुँगा (सूर्यः) उसे जैसे सूर्य अपनी रोशनी सारे संसार में फैला देता है, इस ज्ञान-विज्ञान की ज्योति को मैं भी सारे संसार में फैला दूँगा (स्वाहा) निस्वार्थ भावना के साथ।

3. (अग्निः) प्रभु आपकी (वर्चो ज्योतिः) तीसरी ज्योति 'शारीरिक बल' है (वर्चः) मै इसे प्राप्त कर बलवान और शक्तिमान बनूँगा, परन्तु वर्च की तरह इसे अच्छे कार्यों में ही लगाऊँगा, इसका दुरूपयोग कभी नहीं करूँगा (स्वाहा) ताकि इससे सभी का लाभ हो।

4. (सूर्यो) प्रभु आपकी (वर्चो ज्योतिः) चौथी ज्योति 'धन-बल' है (वर्चः) मैं धन प्राप्त करके धनवान और ऐश्वर्यवान बनूँगा, परन्तु वर्च की तरह इस धन को ईमानदारी से और उत्तम रास्तों से कमाऊँगा, किसी का अहित करके नहीं (स्वाहा) और परोपकारी कार्यों में लगाऊँगा।

5. (ज्योतिः सूर्यः) प्रभु आपकी पाँचवीं ज्योति 'प्रेम और दया' है (सूर्यःज्योतिः) मैं प्रेम और दया का सूर्य बनकर सारे संसार को आजीवन इस का पाठ पढ़ाता रहूँगा (स्वाहा) ताकि संसार के सभी प्राणियों का लाभ हों।

इंसान को सही मायने में इंसानियत सिखाने और वचनबद्ध करने के लिए कितने सुन्दर भाव हैं इन ऋचाओं के। यदि आज भी हम इन सूत्रों को समर्पण भावना के साथ अपना लें तो यह धरती स्वर्ग बन जाऐ।

एक सम्भ्रान्त एवं निष्ठावान आर्य परिवार से होते हुए और एक वैज्ञानिक सोच रखने के कारण मैं न तो किसी पूर्वाग्रह से ग्रस्त हूँ और न ही अन्धभक्त। अपने विचार रखने की कोशिश कर रहा हूँ। आशा है आने वाले समय में लोगों को पसंद आऐं और इनसे लाभान्वित हों। मैं इस सन्देश को जन-जन तक पहुँचाना चाहता हूँ। विद्वानों से मेरी प्रार्थना है कि आगे जो भी वेदों के भाष्य किए जाऐं वे एक तो इतनी सरल भाषा में हों कि जिनको साधारण से साधारण इंसान भी आसानी से समझ सके। कोई भी बात गोल मोल बेसिर पैर की या गोपनीय भाषा में न हो और पूरी तरह से वैज्ञानिक रूप में तथ्य परक हो। दूसरे वे ऐसी तर्क संगत हों कि जिनकों संसार का हर बुद्धि जीवी जो चाहे किसी भी धर्म को मानने वाला क्यों न हो इनको स्वीकार कर सके। इनको हम किसी के भी सामने रखते हुए गौरवान्वित मेहसूस कर सकें। इसके लिए जरूरी है कि एक वैज्ञानिक की तरह सोच रखते हुए और सन्दर्भ को ध्यान में रख, आगे पीछे के मन्त्रों के साथ तालमेल रखते हुए भाष्य किये जाऐं। मेरी हार्दिक इच्छा है कि इनका हर भारतीय नियमित पाठ करके लाभान्वित हो न कि ये केवल घर अथवा लाइब्रेरी की शोभा बढ़ाने की पुस्तकें बनी रहें। साथ ही यह भी कहना

चाहूँगा कि जो मन्त्र गणित, भौतिक, रसायन, ज्योतिष (अन्तरिक्ष विज्ञान) और आयुर्विज्ञान से जान पड़ें उनके अर्थ इन विषयों के पारंगत विशेषज्ञ करें ताकि इन गूढ़ सूत्रों के सही अर्थ सामने आऐं। अन्यथा प्रयत्न केवल अन्धे के हाथ में लाठी के समान ही होगा। मेरा यह मानना है कि ज्ञान और विज्ञान की सीमाऐं असीम हैं। हम बीते हुए कल तक जिन बातों को अन्तिम सत्य मानते थे आज उनकी नई परिभाषाऐं लिखी जा चुकी हैं, हमें अनेकों नए सत्यों की जानकारी हो चुकी है। आगे आने वाला कल इनमें भी परिवर्तन लाकर न जाने कौन सी नई राहें दिखादे। इसलिए हमें अपनी सोच को पूरी तरह खुला रखना है।

हमें अपने इन आदि ग्रन्थों को ठुकराना या किसी को भी ठुकराने देना अथवा मज़ाक उड़ाने देना बर्दाश्त नहीं करना चाहिए। इनमें इस भूखण्ड में पनपने वाली संस्कृति की जड़े हैं। इन जड़ों पर ही आगे चलकर हिन्दू, जैन, बौद्ध और सिक्ख धर्म पनपे, और पल्लवित हुए। ठीक उसी तरह जैसे कि यरूशलम में पनपी संस्कृति से यहूदी, ईसाई और मुस्लिम धर्म बने।

अन्त में मेरा पाठकों से अनुरोध है कि मेरे इन यजुर्वेद के पाँच अध्यायों के अनुवादों को केवल एक बार शुरू से अन्त तक पढ़ने का कष्ट अवश्य उठाऐं। यदि अच्छे लगें तो अपने विचार मेरे तक जरूर भेजें, आभारी रहूँगा। मैने इस पुस्तक को लिखने में पं. हरिशरण सिद्धान्तालंकार के भाषानुवादों से बहुत मदद ली है, इसके लिए मैं उनका हृदय से आभार व्यक्त करता हूँ।

यजुर्वेद

अथ प्रथमोऽध्यायः

(ऋषि-परमेष्ठी, प्रजापति। देवता-सविता, यज्ञ, विष्णु, अग्नि, प्रजापति, अप्सवितारौ, इन्द्र, वायु, द्यौविद्युतौ। छन्द-बृहती, उष्णिक्, त्रिष्टप्, जगती, अनुष्टप्, पंक्ति, गायत्री।)

।। ओउम्।। इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमायकर्मणऽ आप्यायध्वमघ्न्याऽइन्द्राय भागं प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मा वस्तेनऽईशत माघशꣳ सोध्रुवाऽअस्मिन् गौपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि।।1।

परम् पिता (इषे-इषप्रेरणे)- आपकी प्रेरणा पर, (त्वा) आपके दिए हुए (ऊर्जे) ज्ञान एवं ऊर्जा से (त्वा) आपके ही बताए (वायव स्थ) परोपकारी कार्यों में हमेशा लगे रहें (देवोवः सविता) जगत उत्पादक प्रभु आप हमें (प्रार्पयतु) प्रेरित करते रहें (श्रेष्ठ तमाय कर्मणे) अच्छे से अच्छे कार्यों को करने में (आप्याय् अध्वम्) ताकि हम निरंन्तर चलते रहें पवित्र रास्तों पर (अघ्न्या) किसी का भी अहित ना करते हुए (इन्द्राय भागम्) धन-दौलत और शक्ति के मालिक बनें (प्रजावतीः) उत्तम सन्तानों वाले हों (अनमीवाः) पूर्ण रूप से निरोगी (अयक्ष्माः) और भयंकर बीमारियों से दूर रहें (मा वः स्तेन ईशत) हम अपनी बुद्धि और मेहनत से धन कमाऐं

त्रुटि सुधार देखें

और ना ही पाप से घिरे लोग हमारे आदर्श बनें (ध्रुवा अस्मिन् गोपतौस्यात्) हे प्रभु हम वेदों की सुन्दर शिक्षाओं में ही स्थिर रहें, (बह्वीः) ऐसे उत्तम और (यजमानस्य) शुभ कार्यो को करने वाले हम (पशून पाहि) पाशविकता से हमेशा बचे रहें।।

वायु- सतत क्रियाशील, जीवन दायिनी और परोपकारी होती है। पाशविकता-पशुवृत्ति= जंगली और मांस भक्षी पशु का केवल एक ही ध्येय होता है सारे जीवन पर्यन्त दिन रात अपने लिए और अधिक से अधिक अपने छोटे बच्चों के लिए खाने की तलाश करना, इसके लिये यदि किसी से कुछ छीनना पड़े या उसको मार कर हासिल करना पड़े तो वह भी करना। यदि किसी के कंकाल से भी कुछ खाने को मिले तो उसको भी नोंच लेना। और ऐसी सोच पाशविकता है।

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधाऽ असि। परमेण धाम्ना दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्।।2।।

हे प्रभु (बसुः) यज्ञमयी शुभ कर्म करने वाला मैं श्रेष्ठ मानव (पवित्रम् असि) मन-वचन-कर्म से पूर्ण रूपेण पवित्र हूँ (द्यौः असि) प्रकाशमय जीवन वाला (पृथिवी असि) स्थिर प्रज्ञ और विशाल हृदय (मातरिश्वनः घर्मः असि) प्राण चेतना से भरा हुआ, दूसरों के दुख, दर्द समझने वाला (विश्वधा असि) सामर्थ्यवान्-औरों को सहारा देने वाला।

(परमेण धाम्ना) तेजस्वी (दृंहस्व मा) उदार- मना (ह्वाः मा) कुटिलता से दूर रहने वाला (ते) प्रभु आपके (यज्ञपतिः ह्वार्षीत) लोक हितकारी कार्यो को तन, मन, धन से हमेशा करता रहूँ।।

सु=अच्छा, भला, श्रेष्ठ।वसु=श्रेष्ठ प्राणी, रचनात्मक कार्य करने वाला। वसुधा=श्रेष्ठ प्राणियों का धारण पोषण करने वाली धरती माँ। जो वसु नहीं है, वे तो वसुधा के भार हैं।

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्। देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः।। 3 ।।

(बसुः) कल्याण के रास्ते पर चलने वाला मैं वसु (पवित्रं असि) पवित्र हो गया हूँ (शतधारं-शतंधारा यस्मिन) माता पिता और गुरूजनों की सैकड़ो शुभ वाणियों की धाराओं से, (पवित्रं असि) पवित्र हो गया हूँ (सहस्रधारम्) हजारों वेद वाणियों की शिक्षाओं से।

(देवस्त्वा सविता) परम पिता आपसे (पुनातु) एक बार फिर से विनती है कि इस (वसु) इंसान को (पवित्रेण शतधारेण) जो हर तरह से पवित्र हो चुका है, की (सुप्वा) श्रेष्ठ और पवित्र (कामधुक्षः) कामनाओं को पूर्ण करना।।

सा विश्वायुः सा विश्वकर्मा सा विश्वधायाः। इन्द्रस्य त्वा भागꣳ सोमेनातनच्मि विष्णो हव्यꣳ रक्ष ।। 4।।

(सा विश्वायुः) प्रभु ही सम्पूर्ण विश्व का जीवन हैं (सा विश्वकर्मा) वही इसके रचनाकार हैं (सा विश्वधाया), वही हैं जो विश्व का पालन करने वाले हैं- अमृत का पान कराने वाले हैं। (इन्द्रस्य त्वा भागम्) सम्पूर्ण विश्व के ऐश्वर्य और शक्ति के स्रोत हैं, (सोमेन) अपनी अमृत धारा से (आतनच्मि) सींचने वाले हैं, पवित्र करने वाले हैं। (विष्णों) हे रक्षक

प्रभु (हव्यम् रक्ष) मुझ कल्याण कारी की रक्षा करते रहना।।

विश्वकर्मा=संसार में जो भी अच्छे कर्म है उनको करने का प्रेरक; निर्माण कर्त्ता खूबसूरती से सजाने वाला सम्पूर्ण सृष्टि का निर्माता। विष्णु=वेवेष्टि व्याप्नोति चराचंर जगत; विष्+नु- विश् प्रवेशने व्यापकस्य, जो चराचर जगत में व्याप्त है- सर्वव्यापक है इसीलिए रक्षक है, सखा है, पालन कर्त्ता है, परम सहायक है।

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि ।। 5 ।।

(अग्ने) हे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के चलाने वाले, (व्रतपते) आप नियमों के पक्के हो (व्रतं चरिष्यामि) मैं भी यम और नियम जैसे उत्तम कार्य करना चाहता हूँ; (तत् शकेयं) इन कार्यो को कर सकूँ, (तत् मे राध्यताम्) ऐसा मेरा व्रत सिद्ध हो। (अहम) मैं (इदम्) इन (अनृतात्)अनृत-बुरे कर्मो को छोड़ (सत्यम्) सत्य -अच्छे कर्मो का (उपैमि) पालन करता रहूँ।।

आष्टाङ्ग योग = यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि। यम = अहिंसा, सत्य, अस्तेय, (दूसरे के धन वैभव का लालच न करना), ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह। नियम = शौच (साफ सफाई), सन्तोष, तप (समाज के लिए कष्ट उठाना), स्वाध्याय, ईश्वर में आस्था।

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति। कर्मणे वां वेषाय वाम् ।। 6 ।।

(कस्त्वा) कौन हैं जो तुझे (युनक्ति)सत्य और अच्छे कर्मों के लिए प्रेरित करते हैं? (स) वही प्रभु (त्वा) तुझे (युनक्ति) ऐसे कर्मों के लिए प्रेरित करते हैं। (कस्मैं) क्यों वे (त्वा) तुझे (युनक्ति) सच्चे और अच्छे कर्मों के लिए प्रेरित करते है? (तस्मै) इसलिए (त्वा) तुझे (युनक्ति) इन के लिए प्रेरित करते हैं (कर्मणेवां) क्योंकि तू जो कुछ करता है (वेषाय वां) उसका फल तुझे ही मिलना है।।

नोटः 1. करता था तो क्यों रहा, अब करि क्यों पछताय।

बोया पेड़ बबूल का आम कहाँ से खाय।।

2. जो तोकू काँटा बुवै, ताहि बोय तू फूल।

तो कू फूल के फूल हैं ताकू हैं तिरसूल।।

प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तꣳरक्षो निष्टप्ता ऽ अरातयः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि ।। 7 ।।

(प्रत्युष्टं) समाप्त हो जाऐं (रक्षं) स्वार्थ पूर्ति की भावनाऐं, (प्रत्युष्ट) समाप्त हो जाऐं (अरातयः) कृपण वृत्तियाँ, (निष्टप्तम्) निश्चय से समाप्त हो जाऐं (रक्षः) दूसरों को दुख देकर सुख पाने की भावना, (निष्टप्ता) निश्चय से समाप्त हो जाऐ (अरातयः) ओछापन, और (उरू) मेरा हृदय (अन्तरिक्षम्) खुले आसमान की तरह साफ और विशाल (अन्वेमि) हो जाए।

नोटः राक्षस वृत्ति = केवल अपने स्वार्थ की सोचना, दूसरों को कष्ट पहुँचा कर आनन्द की अनुभूति करना, माँस-मदिरा का पान करना। कुत्सित = कंजूस, ओछे भाव रखना कृपणवृत्ति-दूसरों की

सहायता न करना। उरु = विस्तृत, प्रशस्त, महान, बड़ा, अतिशय, अधिक, प्रचुर, श्रेष्ठ, मूल्यवान। उरस् = छाती, वक्षस्थल।

धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान्धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः। देवानामसि वन्हितमꣳ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देव हूतमम्॥8॥

(धूः असि) हे प्रभु! आप ही सब राक्षसी भावनाओं का (धूर्व) नाश करने वाले हो, (धूर्वन्तम्) विनाश की ओर ले जाने वाली इस सोच का ही आप (धूर्व) नाश कर दो। (यः) जो (अस्मान्) हमारा (धूर्वति) नाश करें (तं) उन लोगों की ऐसी सोच को (धूर्व) नष्ट कर दो, (यं) जिससे (वयं धूर्वामः) हम किसी दूसरे का नाश करें (तम् धूर्व) हमारी उस भावना को आप नष्ट कर दो। (देवानाम्) दिव्य गुणों वाले प्रभुवर (असिवह्नितमं) हमें दिव्य गुणों से भर दो, (सस्नितमं) मधुर-पवित्र बना दो (पप्रितमम्) प्रीति से भर दो, (जुष्टतंम) श्रेष्ठ बना दो। (देवहूतमम्) सद्गुणों वाला बना दो।।

नोटः देव= देवो दानाद्वा, द्योतनाद्वा, दीपनाद्वा। द्यु स्थाने भवतीति वा। दान = विद्या का, धन का, अन्न-जल का, जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति का, गरीबों को कपड़ों और किताबों का, वृद्धों के लिए आश्रय और सेवा का। द्योतन = अच्छी शिक्षा और संस्कार देकर दूसरों के जीवन में खुशियाँ भर देना। दीपन = दूसरों को रोशनी देने लायक बना देना, राह दिखाने लायक बनाना। द्युस्थाने भवतीति = प्रभु के परम आनन्द में खो जाने वाला।

अह्रुतमसि हविर्धानं दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्। विष्णुस्त्वा क्रमतामुरू वातायापहतꣳ रक्षो यच्छन्तां पञ्च ॥9॥

(अह्रुतम् असि) तुम कुटिलता से परे हो, (हविर्धानम्) तुम यज्ञ शेष का सेवन करने वाले हो, (दृंहस्व) इस पर दृढ रहना, (माह्वाः) कभी बुरे काम में नहीं लगना और (ते) तुम्हारे (यज्ञपतिः) सदकार्य (मा ह्वार्षीत) कभी ना छूटें। (विष्णुः) सजाने-संवारने और पालने की प्रवृत्ति (त्वा क्रमताम्) तुम्हें हमेशा प्रेरित करती रहे। (उरु वाताय) तुम्हारा सम्पूर्ण जीवन सभी के लिए लाभकारी हो। (अपहतं रक्षः) विध्वंसक भावनाऐं नष्ट हों। (यच्छन्तां पञ्च) तुम्हारी इन्द्रियां (आँख-कान-नाक-जीभ और स्पर्श) तुम्हारे वश में रहें॥

नोटः यहाँ विष्णु शब्द इंसान के लिए प्रयोग में लिया गया है। यज्ञशेष = दूसरों को बाँटने के बाद अपने लिए लेना-ठीक प्रभु के प्रसाद के रूप में। उरु = विशाल। वाताय = निस्वार्थ भाव से उपकार करना। पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ ही इन्सान को लालच में सच्चे रास्ते से भटका देती हैं।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। अग्नये जुष्टं गृह्णाम्यग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि ॥10॥

(देवस्य त्वा सवितुः) हे प्रभु आप ही सब कुछ देने वाले हो। (प्रसवेऽश्विनोः बा हुभ्यां) फिर भी जो कुछ अपने बाहु बल से मैं पैदा करुँगा (पूष्णो हस्ताभ्याम्) और हाथों से संवारूँगा। (अग्नये जुष्टं

गृह्णामि) हे ऊर्जा के स्रोत आपको समर्पित करके ही उसे अपने उपयोग में लूँगा। (अग्निषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि) शक्ति सम्पन्न होकर भी मैं सौम्यता और शान्ति के साथ समर्पित भावना से ही उसे अपना मानूँगा॥

नोटः इस मन्त्र को ध्यान करने से 'मैं' अथवा ''मैंने किया'' के भाव की समाप्ति हो जाती है।

भूताय त्वा नारातये स्वरभिविख्येषंदृꣳह न्तां दुर्याः पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि। पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्याऽउपस्थेऽग्ने हव्यꣳरक्ष ॥11॥

(भूताय) प्राणिमात्र के हित के लिए (त्वा) प्रभुवर आपको (न अरातये) मैं मित्र भाव से (स्वः) कल्याण अर्थ (अभिविख्येषम्) अपने चारों और देखता हूँ। (दृंहन्ताम्) दृढ़ हो (दुर्याः) मेरा मन (पृथिव्याम्) तन (उरु अन्तरिक्षम्) और उदार हृदय,। (अन्वेमि) ढूँढता हूँ मैं (पृथिव्याः) अपने आप को (त्वा) आपके (नाभौः) केन्द्र में, (सादयामि) और पाता हूँ मैं (आदित्य) हे शक्तिपुञ्ज (उपस्थे) अपने को आपके बेहद पास। (अग्ने) हे राह दिखाने वाले (हव्यं रक्ष) मेरे सद्कार्यों और कल्याणकारी कार्यों में मेरी रक्षा करते रहना।।

नोटः कस्तूरी कुण्डल बसै मृग ढूँढे जग मांहि। ऐसे घट घट राम हैं दुनियाँ देखत नांहि।

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः। देवीरापोऽअग्रेगुवोऽअग्रेपुवोऽग्र ऽइममद्य यज्ञंनयताग्रे यज्ञपतिꣳसुधातुं यज्ञपतिंदेवयुवम् ॥12॥

(पवित्रे स्थो) पवित्र बने रहो (वैष्णव्यौ-विष्लृ व्याप्तौ) विशाल हृदय वाले, दूसरों के दुख दर्द को समझने वाले (सवितः) दुनियाँ बनाने वाले ने (वः) तुम्हें (प्रसव) पैदा किया है (उत्पुनामि) उन्नति के पथ पर जाने के लिए, (अच्छिद्रेण) दोष रहित, (पवित्रेण) पवित्र, (सूर्यस्य रश्मिभिः) आशीर्वाद भरी किरणों और (देवीः आपः) अपनी कृपा की बौछारों से भिगोकर। (अग्रेगुवः) अपने ध्येय की ओर बढ़ो; (अग्रेपुवः) आने वाले पवित्र रास्तों पर (ऽग्र इमं अद्य यज्ञं) कल्याण के इस पथ पर आगे जाओ (नयत अग्रे) और भी उन्नति करो, (यज्ञपतिं सुधातुं) यज्ञपति तुम अमृत बरसाने वाले हो जाओं, (यज्ञपति देवयुवम्) कल्याण पथ के राही तुम देवतुल्य हो जाओ।।

नोटः वैष्णव जन तो तेने कहिए, जे पीर पराई जाने रे।

युष्माऽइन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्ये यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये प्रोक्षिता स्थ। अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि। दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि ॥ 13 ॥

(युष्मा) तुम्हें (इन्द्रो) परम् ऐश्वर्यशाली प्रभु ने (ऽव्रणीत) चुना है (वृत्रतूर्ये) स्वार्थो को त्यागने के लिए अतः (यूयं इन्द्र ऽवृणीध्वं वृत्रतूर्ये प्रोक्षिता स्थ) प्रभु के चुने हुए तुम निस्वार्थी दूत बने रहना, (अग्नये) परम शक्ति के (त्वा जुष्टं) तुम कृपापात्र (प्रोक्षामि) विशेष दूत हो इसलिए (अग्निषोमाभ्यां) शक्ति और सौम्यता के (त्वा जुष्टं प्रोक्षामि) तुम विशेष-दूत बने रहना। (दैव्याय) दैवी कार्यो के लिए (शुन्धध्वं) अपने को तपाओ-तैयार करो ताकि (देव यज्ञायै) देव तुल्य सत्कर्मो को (यत्

वः ऽ शुद्धा) जो भी अशुद्ध करें-विरोधी हों (पराजघ्नु) उनको पराजित करो (इदं वः तत् शुन्धामि) और ऐसों को सही मार्ग पर लाओ।।

शर्मास्यवधूतꣳ रक्षोऽवधूताऽअरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रतित्वादितिर्वेत्तु। अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावासि पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु ॥ 14 ॥

हे मानव (शर्म असि) तेरा जीवन आनन्द मय है, (अवधूतं रक्षः) राक्षस वृत्तियाँ- काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, और अहंकार तेरे से दूर हो चुकी हैं। (अवधूताः अरातयः) दूर हो चुकी है तेरी कृपणता (अदित्या त्वक् असि प्रति) और दान की तो तू प्रति-छाया है; (त्वा अदितिः वेत्तु) क्योंकि दान के मर्म को तू जानता है। (अद्रिः असि) तू अडिग है, (वानस्पत्यः ग्रावा असि) वनस्पति-जगत की तरह तू निस्वार्थ सेवक है, (पृथुबुध्नः प्रति) विशाल हृदय की तू प्रति-मूर्ति है, (अदित्या त्वक् वेत्तु) क्योंकि तू इस का जानकार है।।

नोटः वानस्पत्यः = वनस्पतियाँ जीवों को हमेशा देती ही रहती हैं- अनाज, दालें, फल, फूल, पत्तों, छाल और जड़ों से, भोजन, ओषधियाँ, आसरा, छाया और जीवन का आधार आक्सीजन और मरने पर जलाने को ईधन, घर बनाने को लकड़ी। वह भी पूरी तरह निस्वार्थ रूप से। पचास साल का पेड़ 15 लाख रूपये का सामान और ऊपर से जीवन रक्षा का लाभ देता है।

अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृह्णामि बृहद्ग्रावासि वानस्पत्यः सऽइदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशमि

शमीष्व। हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि ॥ 15 ॥

हे मानव (अग्नेः तनूः असि) तू ऊर्जा का स्वरूप है और (वाचो विसर्जनं) तू वेद वाणी, ज्ञान-विज्ञान और कलाओं को बाँटने वाला है; अतः (देव वीतये) संसार को सुखमय बनाने के लिए (त्वा गृह्णामि) मैं तुझे ग्रहण करता हूँ, क्योंकि (बृहद् ग्रावा असि) तू इन सारे गुणों को बाँटने वाला है, (वानस्पत्यः) हे दानशील। (सःइदं देवेभ्यो हविः) तू इन देव गुणों के अनुसार निस्वार्थ रूप से काम कर। (शमीष्व सुशमि शमीष्व) कल्याण करने वाले तू इन परम उत्तम कार्यों में लगा रह। (हविष्कृत् एहि, हविष्कृत एहि) यही कल्याण करने का मार्ग तो मेरे पास आने का रास्ता है।।

हवि= निस्वार्थ रूप से सबके लिए कल्याण करना। शं = कल्याण।

कुक्कुटोऽसि मधुजिह्वऽइषमूर्जमावद त्वया वयꣳ संघातꣳ संघातं जेष्म वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु परापूतꣳ रक्षः परापूता अरातयोऽपहतꣳ रक्षो वायुर्वो विविनक्तु देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना ॥ 16 ॥

(कुक्कुटः- कुक पर-द्रव्यादानं कुटति हिनस्ति, असि) हे मानव तू दूसरे का सब कुछ छीन लेने की प्रवृत्ति वाला हो अपने स्वार्थ के लिए (मधु जिह्वः) अपनी जीभ के स्वाद के लिए, तृष्णा पूर्ति के लिए (इषम् ऊर्ज) इस भावना को (माआवद) छोड़ दे, (त्वया) तू (वयं संघातम्

संघातम्) उन विचारों को जो तेरे लिए घातक हैं समाप्त कर दे (जेष्म) जीतने वाला बन (वर्ष वृद्धम् असि प्रति) तू वर्षो के संस्कारों की प्रति है, (त्वा वर्षवृद्धंवेत्तु) तू वर्षों का अनुभवी जानकार है (परापूतं रक्ष:) राक्षस वृत्तियाँ दूर कर (परापूता अरातयो:) कृपण भावनाऐं दूर कर (अपहंत रक्ष:) तू संस्कार वान है (परापूतं रक्ष:) राक्षस वृत्तियों का अन्त कर दे और (वायु: विविनक्तु:) निस्वार्थ परोपकार की भावना ला क्योंकि (देवो व: सविता) पैदा करने वाले ने हमें दानशील बनाया है, (हिरण्यपाणि:) स्वर्णमय हाथों वाला (प्रति गृभ्णातु) कल्याण करने वाला, (अच्छिद्रेण पाणिना) निर्दोश हाथों वाला।।

धृष्टिरस्यपाऽग्नेऽ अग्निमामादं जहि निष्क्रव्यादश्रं सेधादेवयजं वह। ध्रुवमसि पृथिवीं दृश्रं ह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय ॥ 17 ॥

हे मानव, (धृष्टि: असि) तू-काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, मत्सर- का दमनकारी है (अग्ने) उन्नति के पथ पर चलने वाले ऊर्जावान् (अग्निम् आमादं जहि) तू अपने अन्दर की इन अग्नियों को समाप्त कर दें, (नि:) निश्चय से (क्रव्यादं सेध) इन बुरी भावनाओं का अंत कर; (देव यजं वह) देवतुल्य गुणों को धारण कर। (ध्रुवं असि) तू अडिग है, (पृथिवीं दृंह) अपने आपको दृढ़ बना ले (ब्रह्मवनि त्वा) तू ज्ञानवान है (क्षत्रवनि) शक्तिशाली है (सजातवनि) संस्कार वाला है (उपदधामि) मैं तेरे साथ हूँ (भ्रातृव्यस्य वधाय) तेरी बुरी भावनाओं का अन्त करने के लिए।।

नोट: यहाँ अग्नि शब्द को मानव के लिए प्रयोग किया है।

पृथिवी= शरीर

अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व धरुणमस्यन्तरिक्षं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय। धर्त्रमसि दिवं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय। विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्यऽउपदधामि चित स्थोर्ध्वचितो भृगूणामंगिरसां तपसा तप्यध्वम् ॥ 18 ॥

(अग्ने) हे उन्नतिशील मानव तू (ब्रह्म गृभ्णीष्व) ज्ञान का ग्रहण कर, (धरुणमसि) धैर्यवान है तू (अन्तरिक्षं दृंह) अपने हृदयाकाश को दृढ़ बना; (ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि) तुझ ज्ञानी, बलवान और संस्कारित के मैं साथ हूँ (भ्रातृव्यस्य वधाय) शत्रुओं के सम्पूर्ण नाश हेतु। (धर्त्रमसि दिवं दृंह) तू धीर, गंभीर, बहकाने वाली बातों में ना आने वाला और अपने स्वयं के विचारों पर दृढ़ है, (ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजात वन्युपदधामि) ज्ञानी, बलवान, संस्कारित मैं तेरे साथ हूँ (भ्रातृव्यस्य वधाय) शत्रुओं का पूरी तरह विनाश करने के लिए (विश्वाभ्यः आशाभ्यः उपदधामि) सारे विश्व की उम्मीदों के लिए मैं तेरे समीप हूँ; (चितः स्थ ऊर्ध्व चितः) तू अपने चेतन-मन को उत्कृष्ट चैतन्य बना कर रख (भृगूणाम् अङ्गिरसाम्) ताकि तेरा मन और अङ्ग-अङ्ग (तपसा तप्यध्वम्) तेरे सत्कर्मों से तप कर- परम् शुद्ध हो जाएें।।

नोटः शत्रु=बाहरी- आक्रमणकारी दुश्मन, आतंकवादी, देशद्रोही। अन्दरूनी- काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, मत्सर (ईर्ष्या)। दिवं = खुले विचारों वाला- दकियानूसी नहीं।

शर्मास्यवधूतꣳ रक्षोऽवधूताऽअरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादि तिर्वेत्तु। धिषणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु दिवः स्कम्भनीरसि धिषणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्तु ॥ 19 ॥

हे मानव, (शर्म असि) तू आनन्दमय है, (अवधूतम् रक्षः) राक्षसी भावनाओं को तूने त्याग दिया है, (अवधूताः अरातयः) कृपण वृत्ति को त्याग दिया है (अदित्या त्वक् असि प्रति) तू, दिव्य गुणों की प्रति मूर्ति है (त्वा अदितिः वेत्तुः) तू दिव्य गुणों का ज्ञाता है,। (धिषणा असि) तू हर बात को अच्छी तरह समझने वाला है (पर्वती प्रति) तू सम्पूर्ण है- अपनी कमियों को दूर करने वाला है, (अदित्याः त्वक् वेत्तु) दिव्य गुणों का जानकार है (दिवः स्कम्भनी असि) ज्ञान के प्रकाश का आधार है; (धिषणा असि) तू गम्भीर है (पार्वतेयी प्रतित्वा) तू सम्पूर्ण होने की क्षमता रखता है (पर्वती वेत्तु) क्योंकि तू सम्पूर्ण होने का अर्थ भली भांति जानता है।।

धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा। दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीनां पयोऽसि ॥ 20 ॥

हे प्रभु (धान्यम् असि) तुम जीवन का आधार हो, (देवान् धिनुहि) दिव्य गुणों के भण्डार, (त्वा) तुम (प्राणाय) प्राण हो (त्वा उदानाय) तुम परम पवित्र हो (त्वा व्यानाय) तुम रग-रग में बसे हो।

(दीर्घाम् अनु) बिल्कुल पास (प्रसितं) बन्धे हुए हो (आयुषे) मेरे जीवन से (धां) मैं तुम्हारे आश्रय में हूँ। (देवो वः सविता) हे पैदा करने वाले परम् प्रभु (हिरण्यपाणिः) स्वर्णिम हाथों से अर्थात् पूरी श्रद्धा और अच्छी भावना के साथ मैं (प्रतिगृभ्णातु) आपको पुकारता हूँ (अच्छिद्रेण) दोष रहित (पाणिना) हाथों (चक्षुषे) और निगाहों वाले मुझ को (महीनां) हे पूजनीय महान (पयोऽसि) अमृतमय बना दो।

दीर्घम् = अत्यन्त। अनु = पास पास, निकटतम, के साथ।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। सं वपामि समापऽओषधीभिः समोषधयो रसेन। सꣳ रेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्तांꣳ संमधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम् ॥ 21 ॥

(देवस्य त्वा सवितुः) हे सम्पूर्ण जगत के उत्पादक (प्रसवेऽश्विनोः बाहुभ्यां) मैं अपने बाहुबल से जो कुछ भी पैदा करूँ (पूष्णों हस्ताभ्यां) और अपने हाथों से सजाऊँ (संवपामि) और उन्हें रोपूं (आपः ओषधीभिः) कष्टहर हितकारी साधनों से (संमोषधयोरसेन) शुभ एवं कल्याणी भावना से (सं रेवतीः जगतीभिः पृच्यन्तां) इन पुण्य कार्यों के साथ सम्पूर्ण जगत का उद्धार करूँ। (सं मधुमतीः मधुमतीभिः पृच्यन्ताम्) इन मीठे प्रयासों से चारों ओर सुख-शान्ति और माधुर्य फैला दूँ॥

आपः = प्यास बुझाने वाला, दुखों को शान्त करने वाला। ओषधी-लाभकारी, हितकारी साधन, जिनसे सम्पूर्ण कष्टों का विनाश हो। रसेन = परिणाम। रेवती = पुण्य कार्य, अच्छी स्थिति।

जनयत्यै त्वा संयौमीदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे त्वा घर्मोऽसि विश्वायुरुरुप्रथाऽउरु प्रथस्वोरु ते यज्ञपतिः प्रथताम् अग्निष्टे त्वचं मा हिꣳसीद्देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके ॥ 22 ॥

(अग्ने) शक्ति पुञ्ज प्रभु ने (जनयत्यै त्वा) तुझे इसलिए पैदा किया है (संयौमि इदम् अग्निषोमयोः) कि इन शक्ति और सौम्यता के गुणों के साथ (इषे त्वा घर्मोऽसि) तेरी भावना बलवान हो, (विश्वायुः) सबके जीवन की रक्षा करने वाले (उरुप्रथाः) सहृदय (उरुप्रथस्व) सभी को अपना मानते हुए (उरु ते यज्ञपतिः) तेरे कल्याण कार्य (प्रथताम्) और भी विस्तृत हों (अग्निम् इष्ट) प्रभु के जो इच्छित कार्य हैं (त्वचं मा हिंसीत) वे कभी रूकें नहीं। (देवः त्वा सविता) पैदा करने वाले प्रभु ने तुझे (श्रपयतु) इतना सक्षम और परिपक्व बनाया है कि तू (वर्षिष्ठे अधिना के)इस संसार को स्वर्ग बना दे।।

मा भेर्मा संविक्थाऽअतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात् त्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा ॥ 23 ॥

(माभेर्मा) तू डर मत, (संविक्थाः) ना किसी अन्यायी के आगे झुक (अतमेरुः यज्ञः) और ना ही यज्ञ समान कल्याण के रास्तों से विमुख हो, (अतमेरुः यजमानस्य) ना ही प्रभु के आदेशों को त्याग। (प्रजा भूयात) प्रभु की संतान है तू, (त्रिताय त्वा) तू त्रिकाल-भूत, वर्तमान-और भविष्य को सम्हालने वाला बन (द्विताय त्वा) तू दोनों लोकों- इस लोक और परलोक का हकदार बन (एकताय त्वा)इस कार्य के लिए तू अकेला ही अजेय है।।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आददेऽध्वरकृतं देवेभ्यऽइन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतो वधः ॥ 24 ॥

परम प्रभु महान रचना कार हैं फिर भी (देवस्य त्वा सवितुः) प्रभु ने तुझे इस संसार का कल्याण करने के लिए चुना है। (प्रसवे) पैदा होकर अर्थात् संसार में आकर (अश्विनोः बाहुभ्यां) अपने बाहुबल से (पूष्णो हस्ताभ्यां) इसे खूबसूरत बना, पल्लवित कर (आददे) प्रभु की दी हुई संसार भर की चीजों का इस्तैमाल कर (अध्वर कृतं) यज्ञ शेष के रूप में अर्थात् संसार के सभी प्राणियों का भला करते हुए (देवेभ्यऽइन्द्रस्य बाहुः असि दक्षिणः) तू परम ऐश्वर्य-कल्याण कर्ता प्रभु का दाहिना हाथ है- (सहस्र भृष्टिः) तू हजारों बाधाओं को नष्ट करने में समर्थ है। (शत तेजा) तू तेजस्वी है, (वायुः असि) तू गतिमान, जीवन दायी, और कल्याणकारी है। (तिग्म तेजा) अपने शौर्य से, तेजधार से (द्विषता वधः) जो इसको नुकसान पहुचाऐं उन दुष्टों को पूरी तरह समाप्त कर दे।।

पृथिवि देवजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिꣳसिषं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव। सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳशतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥ 25 ॥

(पृथिवि) हे दृढ पुरूष (देवजन्य ओषधयाः) देवपुरूषों की भाँति, सांसारिक कष्टों को मिटाने की क्षमताऐं (ते मूलं) तेरे मूल में हैं- तेरे अन्तर मन में हैं। (मा हिंसिषं) हिंसा-तोड़फोड़- विध्वंसक प्रवृत्तियाँ नहीं, (व्रजं गच्छ) तू तो अति सुन्दर-कल्याण के पथ पर जा (गोष्ठानं वर्षतु) तेरे पर सद्वाणियों-वेद की शिक्षाओं की बरसात होती रहे। (ते

द्यौः बर्घान) तेरा हृदयाकाश, विचार और मन उन्नत हों; (देव सवितः परमस्यां) पैदा करने वाले ने तुझे परम श्रेष्ठ बनाया है। (पृथिव्यां) हे दृढ़ पुरूष (शतेन पाशैः) सैकड़ो बंधन (यो अस्मान् द्वेष्टि) जो अहितकारी हैं (यं च) और जो (वयं द्विष्मः तं) हमें मार्ग से भटका दें उन्हें (अतो मा मौक) अपने पर हावी ना होने दे, अपने रास्ते से हटा दे।।

अपाररुं पृथिव्यै देवयजनाद्बध्यासं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितःपरमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्। अररो दिवं मा पप्तो द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक् ॥ 26 ॥

(अपाररुं पृथिव्यै) संसार में संकुचित मनोवृत्ति वाले लोग (देव यजनात्) कल्याणकारी मार्गों से (बध्या सम्) दूर हो जाते हैं, (व्रजं गच्छ) तू कल्याण पथ पर जा, (गोष्ठानं वर्षतु) तुझ पर सद्वाणियों की बरसात होती रहे (ते द्यौर्बधान्) तेरे विचार, तेरा मन, तेरी भावनाऐं उन्नत हों। (देव सवितः) पैदा करने वाले प्रभु ने तुझे (परमस्यां) परम श्रेष्ठ बनाया है, (पृथिव्यां) दृढ़ पुरूष (शतेन पाशैर्यो अस्मान द्वेष्टि) सैकड़ों बन्धन जो अहितकारी हैं (यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्)और जो तुझे तेरे मार्ग से भटका दें उन्हे हावी ना होने दे। (अररुः) कृपण (दिवम् मा पप्तः) उस रोशनी को प्राप्त नहीं कर पाता, (द्रप्सः ते द्याम्) कल्याण करने की तेरी भावना (मा स्कन्) कम ना हो (व्रजं गच्छ ....मौक्) कल्याण पथ के राही शुभ विचारों को अपना और बुरे विचारों को त्याग दे

प्रभु ने तुझे श्रेष्ठ बनाया है तू अहितकारी बन्धनों को काट दे।।

गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि। सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्योना चासि सुषदा चास्यूर्जस्वती चासि पयस्वती च ॥ 27 ॥

(गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि) मैं ऋचाओं के मर्म को ग्रहण करूँगा, (त्रेष्टुमेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि) ज्ञान-कर्म एवं भक्ति की राह चलूँगा, (जागेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि) जागृत करने वाली शिक्षाओं को अपनाऊँगा। (सुक्ष्मा च असि) ये अपनाने योग्य हैं, (शिवा चासि) कल्याण करने वाली हैं, (स्योना चासि) सुख देने वाली हैं, (सुषदा चासि) ऊँचा उठाने वाली हैं (ऊर्जस्वती चासि) ओज और क्षमता देने वाली हैं (पयस्वती च) और इस प्रकार जीवन में आनन्द रस का प्रवाह कराने वाली हैं।।

गा = श्लोक, गाना। गायत्र: गायत्रम्= सूक्त, गीत। गायत्री =(गायन्तंत्रायते- गायत्+त्रा+क+डीप्) 24 मात्राओं का एक वैदिक छंद, संध्या। गायत्रिन् = (गायत्र+इन) वेद सूक्तों का गायक, विशेष कर सामवेद का। त्रय = (त्रि+अयच्) त्रयी वै विद्या-ऋचों यजूंषि सामानि। जागृ = जागते रहना, खबरदार रहना, निद्रा से जगाया जाना, दूरदर्शी

पूरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्नु दादाय पृथिवीं जीवदानुम। यामैरयंश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामु धीरासोऽअनुदिश्य यजन्ते। प्रोक्षणीरासादय द्विषतो

वधोऽसि ॥ 28 ॥

(पूरा क्रूरस्य विसृपो) यह संसार बिषधरों जैसी प्रवृत्ति वालों से भरा है (विरप्शिन् उत् आदाय) अतः विशाल हृदय ज्ञानी ही इनसे बचा सकता है और (पृथिवीं जीवदानुम्) संसार को जीवन दे सकता है। तुम (यामैः) अपने प्रयत्नों से, (अयः चन्द्रमसि) इन परम शान्ति देने वालों की (स्वधाभिः) जीवन शैली (ताम्) उन (धीरासः)विद्वान धीर पुरूषों के आचरण (अनुदिश्य) देखकर अपना (यजन्ते) जीवन सुखमय बना सकते हो। (प्रोक्षणीः) उन ज्ञान की बातों को (आसादय) ग्रहण करके (द्विषतो) अपनी कमियों को- दोषों को (काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, मत्सर, को) (वधः असि) समाप्त कर लो।।

प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ताऽअरातयः। अनिशितोऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि। प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ताऽअरातयः। अनिशिताऽसि सपत्नक्षिद्वाजिनीं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि ॥ 29 ॥

हे मानव तेरे (प्रत्युष्टम् रक्षः) राक्षसी भाव नष्ट हो जाऐं, (प्रत्युष्टाः अरातयः) कृपण-स्वार्थी वृत्तियाँ दूर हो जाऐं (निः तप्तं रक्षो) और निश्चित रूप से भस्म हो जाऐं राक्षसी वृत्तियाँ (निः तप्ता अरातयः) और निश्चित रूप से स्वार्थी भावनाएँ दूर हो जाऐं।

(अनिशितः असि) तेरे वश में हैं (सपत्नक्षित्) नष्ट करने वाली दुर्भावनाऐं (वाजिनं त्वा) क्योकि तू बलवान है, (वाजेध्यायै) अपनी

शक्तियों को (सम्मार्ज्मि) भली प्रकार उपयोग में ला।

(प्रत्युष्टꣳ रक्ष ......निष्टप्ता अरातयः) ताकि तेरे राक्षसी भाव, कृपण और स्वार्थी भावनाऐं निश्चित रूप से समाप्त हो जाऐं (अनिशिता असि) तू कभी क्रोधी न हो (सपत्नक्षित) परिवारों का नाश करने वाली दुर्भावनाओं को (वाजिनीं त्वा) तू वश में कर (वाजेध्यायै) अपनी सारी शक्तियों को (सम्मार्ज्मि) अच्छे कार्यों मे लगा।।

अदित्यै रास्नासि विष्णोर्वेष्पो ऽस्यूर्जे त्वा ऽदब्धेन त्वा चक्षुषावपश्यामि। अग्नेर्जिह्वासि सुहूर्देवेभ्यो धाम्ने धाम्ने मे भव यजुषे यजुषे ॥ 30 ॥

(अदित्यै) हे संसार का कल्याण करने वाले मानव (रास्ना असि) तू कटि बद्ध है, (विष्णोः) संसार के भली भांति पालन के लिए (वेष्पः) समाहित है (उर्जे त्वा) उर्जा तुझ में, अतः (अदब्धेन त्वा चक्षुषा पश्यामि) उम्मीद के साथ तुझे देखता हूँ।

तू (अग्नेः) प्रभु की (जिह्वाअसि) वाणी है, (सु-हूः) संदेश वाहक है, (देवेभ्यः) उत्तम गुणों के साथ (धाम्ने धाम्ने) आहिस्ता आहिस्ता (मे भव) मेरा हो जा (यजुषे यजुषे) याज्यिक-कल्याणकारी बन जा।।

सवितुस्त्वा प्रसव ऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। सवितुर्वः प्रसव ऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः। तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि ॥ 31 ॥

(सवितुः त्वा) पैदा करने वाले ने तुझे (प्रसवः) पैदा किया है (उत्पुनामि) विकारों से रहित, (अच्छिद्रेण) दोष रहित (पवित्रेण) और पवित्र (सूर्यस्य रश्मिभिः) सूर्य की सुनहरी किरणों की तरह।

(सवितुः वः .....रश्मिभिः) उसी तरह पैदा करने वाले ने हम सबको भी पैदा किया है विकारों से शून्य दोष रहित और अपने आशीर्वाद से पवित्र। (तेजो असि) तेजस्वी हैं (शुक्रं असि) शान्त और गम्भीर हैं (अमृतं असि) अमृत तुल्य हैं (धाम असि) तेज पुञ्ज हैं (नाम) विनम्र (देवानां प्रियं) कल्याण कारियों में प्रिय हैं (अनाधृष्टं) धृष्ट नहीं हैं (देव यजनं असि) कल्याण कारियों में गिने जाते हैं।।

अथ द्वितीयोऽध्याय:

(ऋषि–परमेष्ठी, प्रजापति, देवल, वामदेव। देवता–यज्ञ, अग्नि, विष्णु इन्द्र, द्यावापृथिवी, सविता, बृहस्पति, अग्नि और षोम, इन्द्राग्नि, मित्र और वरुण, विश्वेदेव, अग्निवायु, अग्नि, सरस्वती, प्रजापति, त्वष्टा, ईश्वर (परमेश्वर), पितर, आप। छन्द–पंक्ति, जगती, त्रिष्टुप्, गायत्री, बृहती, अनुष्टुप्. उष्णिक्।)

कृष्णोऽस्याखरेष्ठोऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वेदिरसि बर्हिषे त्वा जुष्टां प्रोक्षामि बर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि ।। 1 ।।

(कृष्ण: असि) हे! प्रभु आप परम आनन्द मय हो, (आखरेष्ठ: आ+ख+र+स्थ) सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त (अग्नये) शक्तिपुञ्ज (त्वा जुष्टं प्रोक्षामि) मैं आपके आनन्द में लीन होता हूँ; (वेदि: असि–विद्लाभे) ज्ञान प्राप्त कर (बर्हिषे) वासनाओं से परे होकर (त्वा जुष्टं प्रोक्षामि) मैं आपकी भक्ति में लीन होता हूँ। (बर्हि: असि) आप वासना शून्य हो (स्रुग्भ्य:) और आनन्द के स्रोत हो (त्वा जुष्टं प्रोक्षामि) मैं आपके आनन्द में खो जाना चाहता हूँ।।

अदित्यै व्युन्दनमसि विष्णो स्तुपोऽस्यूर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां देवेभ्यो भुवपतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भूतानां पतये स्वाहा ।।2।।

मानव (अदित्यै) तू दिव्य गुणों वाला (व्युन्दनम् असि्) ज्ञान-गंगा में गोते लगाने वाला है, (विष्णोः स्तुपः असि) कल्याण करने वालों का शीर्ष है; (ऊर्णम्रदसम्) सब की रक्षा करने के लिए (त्वा स्तृणामि) मैं तुझे अपने संरक्षण में लेता हूँ, तुझे (स्वा सस्थाम्-सु+ आस + स्था) श्रेष्ठ पद पर रखता हूँ। (देवेभ्यः) देवतुल्य कार्यों के लिए, (भुवपतये स्वाहा) परोपकारी विचारों के लिए (भुवनपतये स्वाहा) और लोक हितकारी कार्यों के लिए (भूतानां पतये स्वाहा) संसार के सभी प्राणियों की रक्षा करने के लिए मैं तेरे साथ हूँ।।

ऊर्ण = आच्छादने। भुवनम् = लोक, पृथ्वी, स्वर्ग।

गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्याारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः। इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः। मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तां ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः।।3।।

(गन्धर्वः त्वा विश्वावसुः) सम्पूर्ण विश्व को सजाने, सँवारने वाले तुम संसार भर के श्रेष्ठ लोगो (परिदधातु) एक जुट हो जाओ (विश्वस्य अरिष्टयै) संसार को नष्ट होने से बचाने के लिए; (यजमानस्य) सब के हित के लिए (परिधि असि) रक्षात्मक घेरा बन

जाओ (अग्नि इडः) पूरी शक्ति के साथ (ईडितः) संचालित हो जाओ।

(इन्द्रस्य बाहुः असि दक्षिणः) तुम परम प्रभु के दाहिने हाथ हो (विश्वस्य ..... ईडितः) संसार को नष्ट होने से बचाने, सबके हित के लिए, नियम के दायरे मे बंधकर अनुशासन के साथ पूरी शक्ति से संचालित हो जाओ।

(मित्रावरुणौ) तुम्हारे मित्र और परम शक्ति (त्वा उत्तरतः परिधत्ताम्) तुम्हें अच्छी से अच्छी स्थिति में स्थापित करें (ध्रुवस्य धर्मणा) कर्तव्य पालन करने के लिए (विश्वस्य... ईडितः) संसार को नष्ट होने से बचाने के लिए, सर्वहिताय, नियमानुसार, ज्ञान, विज्ञान की शक्ति से संचालित होने के लिए एक जुट हो जाओ।।

वीतिहोत्रं त्वा कवे द्युमन्तꣳसमिधीमहि। अग्ने बृहन्तमध्वरे ।।4।।

(वीति होत्रं- वीति= प्रकाश, होत्रा=पुजारी) ज्ञान विज्ञान के पुजारी (त्वा कवे, कवे-कौति सर्वा विद्या) तुम ही तो हो सब विद्याओं के-ज्ञाता, (द्युमन्तं) तेजस्वी (समिधीमहि) तुम सभी को प्रकाशित करने का उपकार करते हो, (अग्ने) हे ओजस्वी (वृहन्तम्) तुम महान हो और (अध्वरे) किसी भी कुटिलता से परे हो।।

समिदसि सूर्यस्त्वा पुरस्तात् पातु कस्याश्चिदभिस्त्यै। सवितुर्बाहू स्थऽ ऊर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थं देवेभ्यऽ आ त्वा वसवो रुद्राऽ आदित्याः सदन्तु ।।5।।

हे वसु (समित् असि) समाया हुआ है (सूर्यः) जो तेज (त्वा)

तुझ में, (पुरस्तात्-पुरः तात) तेरे सम्पूर्ण वजूद में (पातु) बचाता है (कस्यश्चित्) होने वाली किसी भी (अभिशत्यै) हिंसा को।

(सवितः) पैदा करने वाले-रचना करने वाले का (बाहु) तू बाहुबल (स्थ) है, (ऊर्णम्रदसम्) सभी की रक्षा करने के लिए (त्वा) तुझ में (स्तृणामि) दिव्य गुण (स्वा सस्थम्) भरे हैं, (देवेभ्यः) देवों का तेज (आ त्वा) तुझ में समाहित है, (रुद्राः) नष्ट कर दे उन्हे जो हिंसक हों (आदित्याः) अपने तेज से (सदन्तु) इस धरती पर।।

ऊर्ण मृदसम्= चारों ओर रक्षा करने के लिए।

घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सदऽआसीद घृताच्यस्युप भृन्नाम्ना सेंद प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सदऽआसीद घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सदऽआसीद प्रियेण धाम्ना प्रियꣳ सदऽआसीद। ध्रुवाऽअसदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मां यज्ञन्यम् ।। 6 ।।

हे मानव! तू (घृताची असि) दोषों को दूर कर दीप्ति वाला है, (जुहूः नाम्ना) दानवीर है (सा इदं) अपनी इस उदारता की भावना को (प्रियेण धाम्ना) प्रेम के साथ, भरपूर मन से (प्रियं सद) प्रिय संसार में (आसीद) बाँट।

(घृताची असि) दोष रहित दीप्ति वाले (उपभृत नाम्ना) बड़प्पन के साथ (सा इदं) अपने इस ज्ञान और विज्ञान को (प्रियेण ..... आसीद) प्रेम के साथ भरपूर मन से प्रिय संसार में बाँट।

(घृताची असि) दोष रहित वाले (ध्रुवा नाम्ना) अपने कार्यों को दृढ़ निश्चय के साथ करने वाला जाना जाता है, (सा इदं) अपने इस दृढ़ता के गुणों को (प्रियेण .... आसीद) प्रेम पूर्वक इस प्रिय संसार में बाँट (प्रियेण .... आसीद) प्रेम पूर्वक इस प्रिय संसार को अपने जैसा बना लें।

(ध्रुवा असदन्) दृढ़ विश्वास के साथ रहें (ऋतस्य योनौ) इस सुव्यवस्थित संसार में सभी लोग (ता विष्णो पाहि) और सुन्दर कार्यो के पालन में लगें (पाहि यज्ञं) परोपकारी कार्य करें (पाहि यज्ञपतिम्) प्रभु के बताऐ रास्ते पर चलें (पाहि माम्) प्रभु को याद करें (यज्ञन्यम्) शुभ कार्यो को आगे बढ़ाते जाऐं।।

अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा सरिष्यन्तं वाजजितꣳ सम्मार्ज्मि। नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः सुयमे मे भूयास्तम्।।7।।

(अग्ने) हे उर्जावान मानव (वाजजित्) सब शक्तियों और धनों को जीतने की क्षमता रखने वाले, (वाजं त्वा सरिष्यन्त) मैं तुझे शक्तियों और धनों को प्राप्त करने की प्रेरणा देता हूँ (वाजजितं सम्मार्ज्मि) तू शक्तियों और धनों को जीतकर, (नमो देवेभ्यः) गुणी जनों का सम्मान करना (स्वधा पितृभ्य) पूर्वजों का आशीर्वाद लेना (सुयमे मे) मेरे इन नियम, मर्यादाओं में (भूयाः तम) हमेशा बने रहना।।

अस्कन्नमद्य देवेभ्यऽआज्यꣳ संभ्रियासमङ्घ्रिणा विष्णो मा त्वाव क्रमिषं वसुमतीमग्ने ते च्छायामुपस्थेषं विष्णो स्थानमसीतऽइन्द्रो वीर्यमकृणोदूर्ध्वोऽध्वरऽ आस्थात्।।8।।

(अस्कन्नम्) मैं निर्बाध-अविच्छिन्न रूप से (अद्य) अभी से

(देवेभ्यः आज्यं) श्रेष्ठ जनों का सम्मान करूँगा, (संभ्रियासम) दिलाऊँगा उनको (अड्. घ्रिणा) अपने सम्पूर्ण पुरुषार्थ से (विष्णो) पूरा संरक्षण। (मा त्वा अवक्रमिषं) आपके आदेश का कभी उल्लंझघन नहीं करुँगा, (वसुमति) इस सुन्दर धरती पर (अग्ने ते च्छायाम् उपस्थेषं) हे शक्ति पुञ्ज आपका कृपापात्र बना रहूँगा (विष्णो स्थानम् असीत) संरक्षक का स्थान प्राप्त करुँगा! (इन्द्रो) धन एवं (वीर्यम्) शक्ति से (अकृणोत्) कभी भी ऐसे कार्य नहीं करूँगा, (ऊर्ध्व:अध्वरम् आस्थात्) जो किसी की धार्मिक, सामाजिक अथवा आर्थिक प्रतिष्ठा को नीचे गिरा दे।

अग्ने वेर्होत्रं वेर्दूत्यमवतां त्वां द्यावापृथिवीऽअव त्वं द्यावापृथिवी स्विष्टकृद्देवेभ्यऽइन्द्रऽआज्येन हविषा भूत्स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः ।।9।।

(अग्ने) हे उर्जावान मानव (वेः) अपने आप में प्रेरणा जगा (होत्रं) समर्पित होने की भावना को (वेः) अपने में पैदा कर (दूत्यम्) प्रभु की आज्ञाओं को पालन करने की भावनाऐं (अवतां), उन्नत हो जाऐं (त्वां) तेरे (द्यावा पृथिवी) विचार और व्यवहार, (अव) पवित्र हो जायें (त्वं) तेरा (द्यावा पृथिवी) मन और शरीर, (स्विष्टकृत; सु+ इष्ट + कृत) उत्तम कार्यों को सम्पादित करने में (देवेभ्यः) श्रेष्ठ जनों का (इन्द्र) और परम प्रभु का (आज्येन) मार्ग दर्शन (हविषा) प्रेरणादायक (भूत) हों, (स्वाहा; स्व= स्वार्थ का हा=त्याग) स्वार्थ भावना के त्याग की (सं ज्योतिषा ज्योतिः) इच्छा दिनों दिन प्रज्वलित होती चली जाये।।

होत्र= यज्ञ; कोई भी वस्तु जिसकी हवन में आहुति डाली जाऐ।

अव् = रक्षा करना बचाना, प्रसन्न करना, सुख देना, सन्तुष्ट करना, पसन्द करना कामना करना, इच्छा करना, कृपा करना, उन्नत करना, पवित्र करना।

मयीदमिन्द्रऽइन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम्। अस्माकꣳ संत्वाशिषः सत्या नः संत्वाशिषऽ उपहूता पृथिवी मातोप मां पृथिवी माता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा ।।10।।

(मयि) हमारी (इदं इन्द्रियं) ये सम्पूर्ण इन्द्रियां (इन्द्रः) हे सर्वशक्तिमान प्रभु (दधातु) हमारे वश में हों, (अस्मान्) हमारा (रायः) प्राप्त किया धन (मघवानः) पाप से परे (सचन्ताम्) हो।

(अस्माकं सन्तु आशिषः) हमारी अच्छे कार्यो को करने की इच्छाऐं बनी रहें- ताकि हमारा प्राप्त किया धन सत्कार्यो में ही उपयोग हो, (सत्या नः सन्तु) हम सत्य पर ही स्थिर रहें (आशिष उपहूता पृथिवी माता) सारे अच्छे कार्यो से हम पृथिवी माँ की सेवा करते रहें (उप मां पृथिवी माता ह्वयताम्) ताकि धरती माँ के सपूत कहलाऐं (अग्नि आग्नि ध्रात स्वाहा) हर घातक स्थिति अथवा वस्तु को हम सबके कल्याण हेतु नष्ट कर दें।

आशिष= इच्छाऐं । उपहूता= हर तरफ से। ह्वयताम= आवाहन करना, बुलाना।

उपहूतौ द्यौष्पितोप मां द्यौष्पिता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो

हस्ताभ्याम्। प्रतिगृह्णाम्यग्नेष्ट्वास्येन प्राश्नामि ।।11।।

(उपहूत:) मुझे चारों ओर से घेरे हुए जो है (द्यौ: पिता) पिता के समान यह वातावरण (उपमाम्) मेरे लिए (द्यौ: पिता) पिता जैसी सुरक्षा देता है (ह्वयताम) मुझे अपने आगोश में लेकर (अग्नि: आग्निध्रात स्वाहा) मेरे कल्याण हेतु हरेक घातक स्थिति अथवा वस्तु को अपने में आत्मसात करता है।

(देवस्य त्वा सवितु:) प्रभुवर आपने मुझे मानव जीवन दिया है (प्रसवे अश्विनो बाहुभ्याम) मै आपकी रचना की अपने बाहुबल से रक्षा करुँगा (पूष्णो हस्ताभ्यां) इसे अपने हाथों से सुन्दर बनाऊँगा (प्रतिग्रह्णामि) मैं स्वीकार करना हूँ कि (अग्ने:) प्रभु (त्वा आस्येन) जो कुछ मुझे मिला है वह आपकी कृपा से ही है (प्राश्नामि) मै इसे उसी भावना के साथ ग्रहण करता हूँ।।

ध्रात= अनुभव करना, मेहसूस करना, सूंघना। अश्व= अ–नही, श्व–कल अर्थात् आज, बल = ज्ञान बल (बुद्धिबल), बाहुबल, तपोबल, धनबल से।

एतं ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे। तेन यज्ञमेव तेन यज्ञपतिं तेन मामव ।।12।।

(एतं ते देव) इस सम्पूर्ण सृष्टि के आप ही परम प्रभु हो, (सवित:) आप इसके निर्माता हो, (यज्ञं) कल्याणकारी (प्राहु:) जाने जाते हो (वृहस्पतये ब्रह्मणे) ज्ञान विज्ञान के भण्डार हो। (तेन यज्ञं) आप की दया अपरम्पार है (एव तेन यज्ञपतिं) आप दया के सागर हो। (तेन माम एव)मै आपके बताऐ रास्तों पर चलने वाला बन जाऊँ।।

वृहस्पति= ज्ञान विज्ञान के स्रोत। ब्रह्मणे= निर्माता।

मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु। विश्वे देवासऽइह मादयन्तामोउम्प्रतिष्ठ ।।13।।

(मनः) मेरा मन (जूतिः) क्रियावान और सामर्थ्यवान (जुषताम्) बने, (आज्यस्य) पवित्र कार्यों को करने के लिए (वृहस्पतिः यज्ञं इमम्) ज्ञान के भण्डार प्रभु के इन शुभ कार्यों को (तनातु) आगे बढ़ाने के लिए (अरिष्टं) किसी का भी अनिष्ट ना करते हुए (यज्ञं सम् इमम् दघातु) इन श्रेष्ठतम कार्यों को पूरा करुँ।

(विश्वे देवासः) सारे देवतुल्य लोग (इह मादयन्ताम्) इसमें मेरा सहर्ष सहयोग करें और (ओउम प्रतिष्ठ) प्रभुवर उन्हे इसके लिए प्रेरित करें।

एषा तेऽअग्ने समित्तया वर्धस्व चा च प्यायस्व। वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि। अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा ससृवाꣳसंवाजजितꣳसम्माज्र्मि ।।14।।

(एषा ते) इस तेरी (अग्ने) जीवन यात्रा में आगे बढ़ने वाले ऊर्जावान (समित्= इन्धी दीप्ति, तया) तू अपने आप को इतना उज्ज्वल बना (वर्धस्व च) और इतना बढ़ा (च आप्यायस्व) कि सारे में जगमग हो जाऐ। (वर्धिषी महि) इतना बढ़ा (च वयम) कि हम सब भी (आप्यासिषी महि) इससे आलोकित हो जाऐं।।

(अग्ने) हे उन्नतिशील जीव, (वाजजित वाजं) तू अपनी

शक्तियों को इस तरह अपने वश में कर कि (त्वा) तुझे (ससृवासम्) परम शक्ति की ओर ले जाने में (वाजजितं सम्मार्ज्मि) तेरे वश में की हुई ये शक्तियाँ तेरे लिए सहायक हो जाऐं।।

अग्निषोमयोरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि। अग्निषोमौ तमपनुद तां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि। इन्द्राग्न्योरुज्जि तिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि। इन्द्राग्नी तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि ।।15।।

(अग्निषोमयोः) सौम्यता के साथ पाई हुई शक्ति (उज्जितिम्) विजय पाने के (अनु) पश्चात् (उज्जेषं) परम आनन्द देती है (वाजस्य प्रसवेन= वाग्वै वाजस्य प्रसवेः तै०) वेदों की सद्वाणी की शिक्षा (मा) मुझे (प्रोहामि) नव जीवन देती है।

(अग्निषोमौ) सौम्यता भरी शक्ति (तम्) उनकी दुर्भावनाओं को (अपनुदताम्) दूर कर देती है (यः) जो (अस्मान द्वेष्टि) हमसे विरोध करते है, (यं च) और जिनको (वयम्) हम सब (द्विष्मः) अहितकर मानते है, जो हमारे दुश्मन हैं (वाजस्य एनम् प्रसवेन) उनको इस सौम्यता भरी शक्ति द्वारा (अप ऊहामि) मैं समाप्त कर दूँ।

(इन्द्राग्न्योः) शक्ति और ज्ञान (उज्जितम्) उत्कृष्ट विजय के (अनु) पीछे (उज्जेषम्) सुखद विजय दिलाने के कारक हैं। (वाजस्य) अतः शक्ति और ज्ञान (मा) मुझ में (प्रसवेन प्रोहामि) पैदाकर नवजीवन दो।

(इन्द्राग्नी) ज्ञानपूर्वक मिली शक्ति (तम) उसको (अपनुदताम्) दूर कर देती है (यः) जो (अस्मान्) हम सबके साथ (द्वेष्टि) दुष्मनी मानते है (च यम्) और जो (वयं) हम सब से (द्विष्मः) दुश्मनी करते हैं, (वाजस्य एनं) बुद्धि के साथ शक्ति उन्हें (प्रसवेन) उत्पन्न होते ही (अप ऊहामि) समाप्त कर देती है।।

वाज= ज्ञान मय शक्ति। द्विष्मः= दुश्मन।

वसुभ्यस्त्वा रुदेभ्यस्त्वादित्येभ्यस्त्वा संजानाथां द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम्। व्यन्तु वयोक्तꣳ रिहाणामरुतां पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह चक्षुष्पाऽअग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि।।16।।

(वसुभ्यः त्वा) हे वसु-श्रेष्ठ प्राणी तू (रुद्रेभ्यः त्वा) दुष्टों का दमन करने वाला तू ही है (आदित्येभ्यः त्वा) जीवनदाता भी तू है (संजानाथाम्) तू इन सबका सम्मिलित रूप है, (द्यावा पृथिवी) आलोकितों और दृढ़ों में, (मित्रा वरुणौ त्वा) दैदीप्यमानों और श्रेष्ठों में तू है (वृष्टया आवताम्) और आनन्द की वर्षा करने वाला भी तू है।

(व्यन्तु वयः) स्वयं आनन्द मय हो जा और (अक्तम्) स्पष्ट रूप से (रिहाणा) दूसरों को आनन्दित करते हुए (मरुतां) परम विद्वान और ऋषि समान हो जा (वशा) चित्त वृत्तियों को वश में करके (पृश्निः भूत्वा) आत्मज्ञानी होकर (दिवं गच्छ) दिव्यता को प्राप्त कर।

(तः नः) तब हमारे लिए (वृष्टिम् आवह) आनन्द की धारा बहेगी (चक्षुष्पा अग्ने असि) और तू आखों की ज्योति होकर (चक्षुः मे

पाहि) मेरी आखों में बस जाएगा।।

रूद्र= रौद्र रुप; दुष्टों का नाश करने वाला। मरुतः= ऋषि, विद्वान जो निस्वार्थ सेवा करने वाला हो और बदले में कुछ न चाहे, एक जगह ना टिके, धनों और सम्पत्तियों का मालिक न बने।

यं परिधिं पर्यधत्थाऽअग्ने देव पणिभिर्गुह्यमानः। तं तऽएतमनु जोषं भराम्येष नत्त्वदपचेतयाताऽअग्नेः प्रियं पाथोऽपीतम्।।17।।

(यं परिधिं) जिन मर्यादाओं को (पर्यधत्था) प्रभुवर आप धारण करते हो, (अग्ने) हे ऊर्जा के स्रोत (देव पणिभिः) जिन दिव्य गुणों को (गुह्यमानः) आप पसंद करते हो-स्वीकार करते हो। (तं तएतम्) उन सभी मर्यादाओं और गुणों को (जोषम्) प्रीतिपूर्वक (अनुभरामि) मैं अपने में आत्मसात् कर लूँ, (एषः) इनको (न त्वत्) अपने से (अपचेतयाता) विस्मरण के कारण दूर ना होने दूँ (अग्ने) हे प्रभो (प्रियं पाथः) हितकारी मार्ग (अपीतम्-अपि इतम्) मुझे अवश्य प्राप्त हों।।

सꣳस्रवभागा स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः। इमां वाचमभि विश्वे गृणन्तऽआसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वꣳ स्वाहा वाट्।।18।।

(सं-स्रव-भागाः स्थ= स्रु गतौ, भज् सेवायाम्) उत्तम मार्ग पर चलने वाले बनो, (इषा-इष प्रेरणे) प्रभु की प्रेरणा से (बृहन्तः) तुम प्रगति शील बनो (प्रस्तरेष्ठाः- प्र स्तृ+ स्थ) प्रभु की कृपा में तुम हमेशा बने रहो, औरों के दोष बताते-दिखाते हुए तुम निन्दक ना बन जाना,

(परिधेयाः च देवाः) सुन्दर कार्यों की सीमाओं में रहो-और-देवतुल्य गुणों को अपनाओ; (इमां वाचम्) इन वेद वाणियों को (विश्वे) हर जगह (अभिगृणन्तः) सोते जागते याद करते रहो, (आसद्य) इन में स्थिर होकर (अस्मिन) इस (बर्हिषि) वासनाशून्य पवित्र मन से (मादयध्वम्) आनन्द का अनुभव करो (स्वाहा-स्व+हा) अपने स्वार्थ का त्याग करो (वाट्-वहन्ति क्रियया सुखम्) औरों के सुखों का कारक बनो-परोपकारी बनो।।

घृताची स्थो धुर्यौ पातꣳ सुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तम्। यज्ञ नमश्चतऽउप च यज्ञस्य शिवे संतिष्ठस्व स्विष्टे मे संतिष्ठस्व ।।19।।

(घृताची=घृ- दीप्ति; स्थ) हे सद्वाणियों-वेदवाणियों से आलोकित मार्ग पर चलने वाले लोगो, तुम इसी पर चलते रहना; (धुर्यो) तुम्हारी जीवन यात्रा सही है, (पात) अपने आप को बचाए रखना (सुम्ने) परोपकारी बनकर (माधत्तम) यही तो प्रभु को पाने का मार्ग है।

(यज्ञ नमः च) कल्याणकारी कार्यों को सदा याद रखो और (ते उप) वे तेरे हमेशा समीप हों (च यज्ञस्य शिवे) और सद्कार्यों में सर्व हिताय-कल्याण की भावना (सन्तिष्ठस्व) तुझ में पूरी तरह भरी हों; (स्विष्टे मे सन्तिष्ठस्व) कल्याण की भावना ही तो मुझे अत्यन्त प्रिय हैं।।

स्विष्टे- सु+ इष्टे = अत्यन्त प्रिय।

अग्नेऽदब्धायोऽशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुरद्मन्याऽअविषं नः पितुं कृणु। सुषदा योनौ स्वाहा

वाडग्नये संवेशपतये स्वाहा सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा ।।20।।

(अग्ने) उन्नति के पथ पर ले जाने वाले परम प्रभु (अदब्धायो = अ+दब्ध+आयु) हमारे जीवन की रक्षा करें (अशीतम्) अशान्त और दुखद स्थितियों से (पाहि) बचाऐं। (मा दिद्योः पाहि) मुझे दुष्कर्मो से बचाऐं; (प्रसित्यै पाहि) विषयों के बन्धनों से बचाऐं, (दुरिष्ट्यै पाहि) दुष्टों के सान्निध्य से बचाऐं (दुरद्मन्या) अभक्षीय पदार्थो- जैसे अपना पेट भरने और स्वाद हेतु किसी भी जीव की हत्या करके खाना और (अविषं) विषैली-नशीली वस्तुओं से (नः पितुं कृणु) हमें पिता बचाते रहना।

(सुशदा योनौ) हम अपने घर में सुख पूर्वक रहें, (स्वाहा वाट) परमार्थ की भावना बनी रहे (अग्ने) उन्नति करते जाऐं; (संवेश पतये स्वाहा) हम परोपकार की भावना निद्रा और असावधानी में भी ना छोड़ें। (सरस्वत्यै यशो भगिन्यै स्वाहा) हमारा ज्ञान और यश स्वार्थी ना हो।।

वेदोऽसि येन त्वं देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेन मह्यं वेदो भूयाः। देवा गातुविदो गातुं वित्त्वा गातुमित। मनसस्पतऽइमं देव यज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः ।।21।।

हे मानव (वेदः असि) तू वेद वाणी-सद्वाणियों से भरा हुआ है (येन) क्योकि (त्वंदेव) तू देव तुल्य हो चुका है, (वेद देवेभ्यो) विद्वानों से वेद ज्ञान प्राप्त करके (वेदो अभवः) तू ज्ञानी हो चुका है। (तेन) इसलिए तू अपने (मह्यं वेदो भूयाः) सद्ज्ञान को बनाए रखना।

(देवाः) ज्ञान-ज्योति से दीप्त हुए ज्ञानी लोग (गातु विदः) सही रास्ते की जानकारी रखते हैं (गातुं वित्त्वा) सही मार्ग को जानकर (गातुं इत) रास्ते से भटकना मत।

(मन सस्पते) हे मननशील। (इमं देव यज्ञं) इन देवतुल्य कल्याणकारी कार्यों को (स्वाहा) परोपकार में लगाकर (वाते धाः) चारों ओर सुगन्धि फैला और लोगों को जीना सिखा।।

सं बर्हिरङ्क्ताᳬं हविषा घृतने समादित्यैर्वसुभिः सम्मरुद्भिः। समिन्द्रो विश्वदेवेभिरंक्तां दिव्यं नभो गच्छतु यत् स्वाहा ।।22।।

हे मानव तू (सं) सही रूप में (बर्हिः) अपने जीवन को निर्व्यसनी करने वाला (अंक्ताम) अलंकृत है; (हविषा) त्यागमय जीवन जीने वाला (घृतने) शुद्ध ज्ञान से दोषों को समाप्त कर (सं आदित्यैः वसुभिः) तू सूर्य के समान स्वयं भी आलोकित हो और दूसरों को भी जीवनी शक्ति दे धरती के श्रेष्ठ पुरूषों की तरह (सं मरुद्भिः) अपनी खुशबू और जीवन दायिनी शक्ति चारों और फैला दे। (सं इन्द्रो) आदर के योग्य बन और (विश्व देवेभिः अंक्ताम्) श्रेष्ठ पुरूषों में भी अलंकृत हो (दिव्यं नभो गच्छतु) स्वर्ग में जा अर्थात् स्वर्गिक आनन्द को प्राप्त कर (यत् स्वाहा) इन्ही परोपकारी कार्यों को करते हुए।।

बर्हिः= परम शुद्ध, निर्व्यसनी।

कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति। पोषाय रक्षसां भागोऽसि ।। 23।।

(कः त्वा विमुञ्चति) कौन है जो तुझे मुक्ति के रास्ते पर ले जाता है, (सः त्वा विमुञ्चति) वह परम प्रभु और उनकी शिक्षाऐं ही तुझे मुक्ति की राह पर ले जाते हैं। (कस्मै त्वा विमुञ्चति) कैसे तुझे मुक्ति पथ पर ले जाते है? (तस्मै त्वा विमुञ्चति) अच्छे संस्कार देकर तुझे मुक्ति पथ पर ले जाते है।

(पोषाय) अच्छे संस्कारों और (वेद वाणियों) की शिक्षाओं से पोषित होकर (रक्षसां भगः असि) तू दूसरों की रक्षा करने में भी सहभागी बनता है।।

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम् ।।24।।

(सं वर्चसा पयसा) ज्ञाना मृत पान करके हम सम्पूर्ण व्याधियों और कष्टों से परे होकर वर्चस्वी हों, (सं तनूभिः गन्महि) शारीरिक रूप से सुदृढ़ हो जाऐं एवं (मनसा सं शिवेन) मन से-विचारों से शिव संकल्प युक्त हो जाऐं।

(त्वष्टा) हमें पैदा करने वाले परम प्रभु (सुदत्रों-सु-द-त्रः) हमें धन-सम्पत्ति और साधनों से (विदधातु) सम्पन्न कर दें, (रायः-रा दाने) परन्तु जो धन दान देने हेतु है (अनुमार्ष्ट) उसे प्रभु दूर कर दें (तन्वः) हमसे, (यत्) जो (विलिष्टम्) हमारे स्वार्थ के हेतु कभी काम में ना आए।।

दिवि विष्णुर्व्यक्रꣳस्त जागतेनच्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मानद्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रꣳस्त

त्रैष्टुभेनच्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रꣳस्त गायत्रेणछन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मानद्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽस्मादन्नादस्यै प्रतिष्ठायाऽअगन्म स्वः सं ज्योतिषाभूम ।।25।।

(दिवि) सद्ज्ञान के प्रकाश से (विष्णुः) संसार में कल्याण की भावना रखने वाला, सहारा देने वाला, इसे सुन्दर बनाने वाला (व्यक्रंस्त) आगे बढता ही जाता है, (जागतेन छन्दसा) लोकहित की शिक्षा से प्रेरित (ततः) इन (निर्भक्तो) अज्ञानी (यः अस्मान द्वेष्टि) जो हम सबसे द्वेष करते है (यं च वयं) और जिनको हम भी (द्विष्मो) अप्रीतकर समझते हैं (अन्तरिक्षे विष्णुः) विशाल हृदया काश वाला जो मददगार है (व्यक्रंस्त) आगे बढ़कर मदद करता है (त्रैष्टुभेन छन्दसा त्रि+स्तुभ) अपने आत्म संयम से (ततः निर्भक्तो) उन अज्ञानियों को (यः अस्मान द्वेष्टि) जो हम सबसे द्वेष करते है (यं चवयं) और जिनको हम भी (द्विष्मो) अप्रीत कर समझते है (पृथिव्यां विष्णुः) दृढ़ पुरूष जो संरक्षक है (व्यक्रंस्त) अपने प्रयत्न में आगे बढ़ता ही जाता है (गायत्रेण छन्दसा) वेद वाणियों के प्रभाव से (ततः निर्भक्तों) उन अज्ञानियों के लिए (यः अस्मान् द्वेष्टि) जो हम सबसे द्वेष करते है (यंच वयं) और जिनको हम भी (द्विष्मो) अप्रतीकर समझते हैं (अस्मात् अन्नात्) हमारे ग्रहण करने योग्य जीवन के आधार और (अस्यै प्रतिष्ठायाः) हमारे दिए सम्मान को (अगन्म) नहीं समझ पाते (स्वः सं ज्योतिषा अभूम) निस्वार्थ भाव से की हुई ज्ञान की रोशनी से अन्त में प्रभावित हो जाते हैं– वशीभूत हो जाते है।।

स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदाऽअसि वर्चो मे देहि।

सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ।।26।।

(स्वं भूः असि) हे परम प्रभो आप स्वयं भू हो, (श्रेष्ठो) परम श्रेष्ठ (वर्चोदा असि) अपार ओज के भण्डार हो (वर्चो मे देहि) अपनी ओज से मुझे भी अनुगृहीत कर दों। (सूर्यस्य आवृतम्) आपकी अनुपम आभा से (अनु आवर्ते) मैं भी आलोकित हो जाऊँ।।

सूर्य= परम प्रभु। आवृत= आभा मंडल। वर्चः = ओज, कान्ति, आभा, रूप।

अग्ने गृहपते सुगृहपतिस्त्वयाऽग्नेऽहं गृहपतिना भूयासᳬं सुगृहपतिस्त्वं मयाऽग्ने गृहपतिना भूयाः। अस्थूरिणौ गार्हपत्यानि सन्तु शतᳬं हिमाः सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते ।।27।।

(अग्ने) हे प्रभु आप (गृहपते) घर अर्थात् जिन्दगी के मालिक हो (सुगृहपतिस्त्वा) आप ही जिन्दगियों को खूबसूरत बनाने वाले हो (अग्ने) प्रभु (अहं गृहपतिना भूयाः) मैं भी ऐसा जीवन पाऊँ (स सुगृहपतिः त्वं) जिसके आप ही रखवाले हो (अस्थूरिणौ गार्हपत्यानि सन्तु) और आप ही इसे चलाने वाले हो अर्थात् मेरी जीवन नैया के आप ही खेवनहार हो और (शतं हिमाः) सौ साल तक मैं (सूर्यस्य आवृतम् अनु आवर्ते) आप की प्यार भरी छत्र छाया मे बना रहूँ।।

सूर्य = जीवनदाता प्रभु। आवृत = छत्र छाया।

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधीदमहं यऽएवाऽस्मि सोऽस्मि ।।28।।

(अग्ने) हे शक्तिपुञ्ज (व्रतपते) नियमों के नियन्ता! (व्रतम्)

आपके बनाऐ नियमों को (अचारिषम्) मैने आचरण में ले लिया है और (तत् अशंक) उनके पालन से (तत् मे अराधि) आपका मै आज्ञाकारी उपासक हो गया हूँ (इदं अहम्) यह मैं (यः एव असि) जो कुछ हूँ (सः अस्मि) आप में ही आत्मसात् हो गया हूँ।।

अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहा। अपहताऽअसुरा रक्षाꣳसिवेदिषदः ।।29।।

(अग्नये) हे ऊर्जा के स्रोत। (कव्य वाहनाय) सम्पूर्ण सृष्टि को एक लय बद्ध संगीत में चलाने वाले के लिए (स्वाहा-स्व+हा) मैं अपना सब कुछ समर्पित करता हूँ। (सोमाय पितृमते स्वाहा) पिता समान-धीर, गंभीर, शान्ति रूप के लिए मैं समर्पित हूँ। (अपहता) दूर कर दी हैं (असुरा रक्षांसि) आसुरी बुरी भावनाऐं (वेदिसदः) मैने अपने वजूद-तन, मन, वचन से।।

ये रूपाणि प्रतिमुञ्चमानाऽअसुराः सन्तः स्वधया चरन्ति। परापुरो निपुरो ये भरन्त्यग्निष्टांल्लोकात्प्रणुदात्यस्मात् ।।30।।

(ये) जो (रुपाणि प्रतिमुञ्चमाना) अपने रूप शारीरिक शक्ति एवं सौन्दर्य के लिए ही अनुरक्त हो जाते हैं, (असुराः सन्तः) आसुरी वृत्ति से प्रेरित होते है, (स्व धया चरन्ति) केवल अपने ही स्वार्थ की सोचते हैं।

(परापुरः- परागतानि स्व सुखार्थानि अधर्मकार्याणि पिपुरति-द०) दूसरों के हक छीन कर अपने स्वार्थ हेतु अधर्म के रास्ते किसी भी सीमा तक चले जाते हैं, (निपुरो-निकृष्टान दुष्ट स्वभावान्

पिपुरति) निष्कृष्टतम् दुष्ट स्वभाव के हो जाते हैं और (ये भरन्ति) अन्याय से औरों के पदार्थों को हड़प जाते है- (अग्निः) परम प्रभु (तान) उन (लोकात्) व्यवहारियों को (प्रणुदाति अस्मात्) हम से दूर कर देना।।

अत्र पितरो मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वम्। अमीमदन्त पितरो यथाभागमावृषायिषत ।।31।।

(अत्र) उस जगह (पितरो) परम् पिता (मादयध्वम्) प्रसन्न होकर निवास करते हैं (यथा भागम्) जहाँ अपने हिस्से का अपनी मेहनत से अपने प्रयत्न से कमाया हुआ- धन-धान्य, सम्पत्ति एवं ऐश्वर्य का (आवृषायध्वम्) आनन्द प्राप्त करते हैं। (अमीमदन्त पितरो) परम प्रभु आनन्द पूर्वक निवास करते हैं वहाँ (यथा भागम आवृषायिषत) जहाँ औरों को बाँट कर दूसरों का ध्यान रखते हुए, गरीबों-असहायों की मदद करते हुए जो अपने लेने योग्य है उसी को प्राप्त करने की प्रवृत्ति वाले होते हैं।।

नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे नमो वः पितरः पितरो नमो वो गृहान्नः पितरो दत्त सतो वः पितरो देष्मैतद्वः पितरो वासऽआधत्त ।।32।।

हे (नमो वः पितरो रसाय) परम पिता आपने हमें जिन अच्छी बातों का ज्ञान दिया है हम उसके लिए आपके नत मस्तक हैं; (नमो वः पितरः शोषाय) प्रभु आपने जो हमारे दोषों का नाश किया है उसके लिए हम नत मस्तक है; (नमो वः पितरो जीवाय) हे परम पिता आपने जो

जीवन के साधन दिए और सही अर्थो में जीना सिखाया उसके लिए हम नत मस्तक हैं (नमो वः पितरः स्वधायै) हे पिता आपने हमें जो उचित-अनुचित की बुद्धि दी है उसके लिए हम कृतज्ञ हैं; (नमो वः पितरो घोराय) परम पिता आपने हमें जो शत्रु दमन की अद्‌भुत शक्ति दी है उसके लिए कृतज्ञ हैं; (नमो वः मन्यवे) हे परम पिता आपने हमें जो ज्ञान दिया-सत्यासत्य विचारने की राह दी उसके लिए हम कृतज्ञ है; (नमो वः पितरः पितरो) हे प्रभो आपने हमें जो इतने अच्छे माता, पिता आचार्य दिए और इनसे जो संस्कार मिले उसके लिए हम कृतज्ञ हैं; (नमो वो गृहान्नः पितरो) परम पिता आपने हमें धन-धान्य से भरा हुआ घर परिवार दिया है उसके लिए हम कृतज्ञ हैं- नमन करते है; (दत्त सतो वः पितरो) हे परम पिता आपने हमें सत्य की राह दी है (देष्म एतत् वः पितरो वास आधत्त) अब जहाँ भी आवश्यकता पड़े हे प्रभु आपका वहाँ आशीर्वाद हम पर हमेशा बना रहें।।

शुत्र= वाह्य- आक्रमणकारी, आतंकवादी आन्तरिक- काम, क्रोध, मद (नशा), मोह, लोभ और ईर्ष्या।

आधत्त पितरो गर्भं कुमारं पुष्करस्रजम्। यथेह पुरुषोऽसत्।।33।।

(आधत्त पितरो) परम प्रभु बना देना (गर्भ कुमारं) अपने इस पुत्र को गर्भ से ही (पुष्कर स्रजम) ऐसा पवित्र (यथेह-यथा+इह) ताकि यह सही मायने में (पुरुषः असत्) इंसान बन जाऐ।।

उर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम्। स्वधा स्थ तर्पयत मे पितॄन्।।34।।

(ऊर्ज) ऊर्जा (वहन्ति) मिलती है (अमृतं) अमृत समानजीवनी शक्तियों से युक्त (घृतं पयः कीलालं परिस्रुतम) घी, दूध, अन्न, दालें, फल और सब्जियों से भरपूर।

(स्वधा स्थ) मैं और मेरा परिवार इन पर ही आधारित रहेगा और (मे) अपने (तर्पयत पितृन) वृद्ध जनों, पूज्य जनों को भी इनसे तृप्त करता रहूँगा। उनको इनकी कभी भी कभी न होने दूँगा।

नोटः इस मन्त्र में आर्यों की भोजन योग्य वस्तुओं को दर्शाया है। ये सभी पदार्थ बिना कोई हिंसा किए प्राप्त किए जा सकते हैं। इनमें कहीं भी माँस खाने का आदेश नहीं है। इस मन्त्र को यजु0 के अ0 3 म0 20 से जोड़ कर देखें।

अथ तृतीयोऽध्यायः

(ऋषि- आंगिरस, सुश्रुत, भारद्वाज, प्रजापति, सर्पराज्ञी, कद्रू, गोतम, विरूप, देववात, भरत, वामदेव, अवत्सार, याज्ञवल्क्य, मधुच्छन्दा, सुबन्धु, श्रुतबन्धु, विप्रबन्धु, मेधातिथि, सत्यद्यृतिर्वारुणि, विश्वामित्र, आसुरि, शुन्य, शन्युर्बार्हस्पत्य, आगस्त्य, और्णवाभ, बन्धु, वसिष्ठ, नारायण। देवता-अग्नि, सूर्य, इन्द्राग्नी, आप, विश्वेदेवा, बृहस्पति, ब्रह्मणस्पति, आदित्य, इन्द्र, सविता, प्रजापति, वास्तुरग्नि, वास्तुपतिरग्नि, वास्तुपति, मरुत्, यज्ञ, मन, सोम, रुद्र। छन्द-गायत्री, बृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप, जगती, उष्णिक्, अनुष्टुप्।)

समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन ।।1।।

(समिधा= सम्+ इन्ध= दीप्ति) अपनी सारी शक्ति लगा दो (अग्निम्) ज्योतिर्मय से एकाकार होने में (दुवस्यत) इस भावना को बढ़ाते जाओ और (घृतैः) अपने मलों को, दोषों को दूर करो (बोधयत) और बोध करो, अहसास करो (अतिथिम= अत सातत्य गमने, गमन= प्राप्ति) उस अतिथि देवो-परम प्रभु का; (अस्मिन्) और प्रभु की ज्योति

त्रुटि सुधार देखें

दो।।

भावार्थ= हम ज्ञानार्जन करें, हृदय को निर्मल करें और अपने सब कर्मों को प्रभु में अर्पण करने वाले बनें ' इस मन्त्र से मनुष्य का अहंकार समाप्त हो जाता है '।। घृ = क्षरण।

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे ।।2।।

(सुसमिद्धाय) अपनाओ अच्छाइयाँ, (शोचिषे-शुच+इषि) और कामनाओं को पवित्र करो, दीप्ति मान करो, (घृतं) और दोषों का निवारण करो (तीव्रम्) और अधिक प्रयत्नों से (जुहोतन) इन्हें त्याग दो। (अग्नये) दीप्तिमान हो जाओ (जात वेदसे) वेद की शिक्षाओं से।।

तं त्वा समिद्भिरं गिरो घृतेन वृर्द्ध यामसि। बृहच्छोचायविष्ठ्य ।।3।।

(तं त्वा) हे प्रभु वह आपकी (समिद्भिः) सद्ज्ञान की ज्योति (अंगिरः) मेरे अंग अंग में बस जाए (घृतेन) और सारे दोष समाप्त होकर (वर्द्धयाम् असि) यह ज्योति बढ़ती ही जाए (वृहत्) बहुत (शोच) पवित्र हुआ (यविष्ठय) मैं ऊपर उठ जाऊँ।।

उप त्वाग्ने हविष्मतीर्घृताचीर्यन्तु हर्यत। जुषस्व समिधो मम ।।4।।

हम (उप त्वा) आपके बहुत पास आने से (अग्ने) हे ज्योतिर्मय प्रभु, (हविष्मतीः) त्याग पूर्ण-उदार, (घृताचीः घृत+अञ्च) दोषों से रहित (यन्तु) हो गए हैं (हर्यत-हर्य गतिकान्त्योः) हमारे सारे कार्य

कलाप। (जुषस्व) इन पुनीत राहों पर चलने की (समिधो मम्) मेरी भावना और भी तीव्र होती रहे भगवन।।

भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवी व वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवी देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे ।।5।।

(भूःभुवः स्वः) परम प्रभु का सच्चा भक्त (द्यौः इव) द्यौ के समान पूरी तरह आलोकित और, सब को अपने में समेटे हुए-आगोश में लेकर रक्षा करने वाला (भूम्ना) हो जाता है (पृथिवी) समस्त संसार को (व वरिम्णा) उदारता के साथ अपना लेता है- वसुधैव कुटुम्बकं की भावना से भर जाता है। (तस्याः ते) इस तरह तेरा (पृथिवी) सारा संसार ही (देव यजनि) देव तुल्य कर्मस्थली (पृष्ठे) हो जाता है।

(अग्निम्) हे ऊर्जावान, (अन्नादम अन्नाद्याय) तू संसार के लोगों की हर प्रकार की शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक भूख को अपने पवित्र कर्मों से (आदधे) मिटा दे।।

अन्नादम्= जीवन का आधार भूख मिटाने का साधन। भूखः= शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक। आ दघ्= पकड़, उपहार देना। द्यौ = पृथिवी को चारो ओर से घेरे हुए वायुमंडल जो सूर्य की रोशनी से चमक उठता है और उस की रोशनी को सारे में फैला देता है। इसके आगे अन्तरिक्ष है।

आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः पितरं च प्रयन्त्स्वः ।।6।।

(आयम्) यह जीवन (गौः-गच्छति) गतिशील है- कर्म शील है,

(पृश्निः- संस्पृष्टा मासां) इसकी प्रत्येक क्रिया ज्ञान पूर्वक कर; (अक्रमीत् सदन्) इसे निरन्तर उन्नति-पथ पर बढ़ा (मातरम्- स्तुता मया वरदा वेद माता) वेदों की शिक्षाओं को (पुरः) जन-जन तक पहुँचा। (पितरंच) और पूर्वजों की सद्शिक्षाओं को (प्रयन् त्स्वः) विनम्र होकर सब के हित में बता।।

अंतश्चरति रोचनास्य प्राणादपानती। व्यख्यन् महिषो दिवम् ।।7।।

(अन्तः) अन्तः करण (चरति) जगमगा उठा है जिसका (रोचनाय) परम आनन्द के लिए (प्राणात्) मन और आत्मा के (अपानती) सारे दोषों को दूर करते हुए। (व्यख्यन्) दर्शन करता है (महिषो) ऐसा आप्त पुरुष (दिवम्) ज्योतिर्मय प्रभु का।।

त्रिंशद्धाम विराजति वाक् पतंगाय धीयते। प्रति वस्तोरहद्युभिः ।।8।।

(त्रिशत् धाम) तीन सौदिन अर्थात् पूरे समय (विराजति) जिसका अन्तः करण प्रभु ज्योति से जगमगाता है (वाक्) ओठों पर नाम और चर्चा (पतङ्गाय-पतति गच्छति प्राप्नोति) पतंगे की तरह निछावर होने की इच्छा प्रभु के लिए (धीयते) होती है- वह (प्रतिवस्तो; वस्तोः= दिन) हर दिन (अह) निश्चय से (द्युभिः) स्वर्गिक आनन्द पाता है।।

अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा।सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्य्यः स्वाहा। अग्निर्वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा। सूर्यो वर्च्चो ज्योतिर्वर्च्चः स्वाहा। ज्योतिः सूर्य्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ।।9।।

1. (अग्निः) परम प्रभु आपकी (ज्योतिः) पहली ज्योति 'सत्य' है (ज्योतिः) मैं सत्य का पालन करता रहूँगा (अग्निः) इस मशाल को सर्वोपरि रखूँगा, सारे जीवन पर्यन्त लेकर चलूँगा और अगली पीढ़ियों को सोंप जाऊँगा, (स्वाहा) सभी के हितों का ध्यान रखूँगा।

2. (सूर्यो) प्रभु आपकी (ज्योतिः) दूसरी ज्योति 'ज्ञान-विज्ञान' है (ज्योतिः) मैं जो भी ज्ञान और विज्ञान अर्जित करुँगा (सूर्यः) उसे जैसे सूर्य अपनी रोशनी सारे संसार में फैला देता है, इस ज्ञान-विज्ञान की ज्योति को मैं भी सारे संसार में फैला दूँगा (स्वाहा) निस्वार्थ भावना के साथ।

3. (अग्निः) प्रभु आपकी (वर्चो ज्योतिः) तीसरी ज्योति 'शारीरिक बल' है (वर्चः) मै इसे प्राप्त कर बलवान और शक्तिमान बनूँगा, परन्तु वर्च की तरह इसे अच्छे कार्यो में ही लगाऊँगा, इसका दुरूपयोग कभी नहीं करूँगा (स्वाहा) ताकि इससे सभी का लाभ हो।

4. (सूर्यो) प्रभु आपकी (वर्चो ज्योतिः) चौथी ज्योति 'धन-बल' है (वर्चः) मैं धन प्राप्त करके धनवान और ऐश्वर्यवान बनूँगा, परन्तु वर्च की तरह इस धन को ईमानदारी से और उत्तम रास्तों से कमाऊँगा, किसी का अहित करके नहीं (स्वाहा) और परोपकारी कार्यो में लगाऊँगा।

5. (ज्योतिः सूर्यः) प्रभु आपकी पाँचवीं ज्योति 'प्रेम और दया' है (सूर्यः ज्योतिः) मैं प्रेम और दया का सूर्य बनकर सारे संसार को आजीवन इस का पाठ पढ़ाता रहूँगा (स्वाहा) ताकि संसार के सभी प्राणियों का लाभ हों।

वर्च= आभायुक्त होना, चमकना, उज्जवल होना। वर्चस्= वीर्य,

बल, ओज, शक्ति, प्रकाश, कान्ति, आभा, रूप। अग्निः= अंगति ऊर्ध्व गच्छति अग्नि कस्माद अग्रणी भवति। ज्योतिस्= प्रकाश, प्रभा, चमक, दीप्ति।

सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या। जुषाणोऽअग्निर्वेतु स्वाहा। सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या। जुषाणः सूर्य्यो वेतु स्वाहा ।।10।।

(सजूः देवेन) दिव्य गुणों के भण्डार परम प्रभु हर पल-हर कदम पर तेरे साथ हैं।, (सवित्रा) तेरे जनक (सजूः) तेरे साथ हैं, (रात्रि इन्द्रवत्या) ऐसी महारात्रि में जो घोर संकटों से भरी हो- जब इंसान को अपने चारों ओर अंधेरा ही अंधेरा नजर आता है। वह हर तरफ से निराश होने लगता है, तब घबराना नहीं क्योंकि (जुषाणः) सबके साथ प्रीति करने वाले मददगार प्रभु तेरे साथ हैं। (अग्नि) तू परम प्रभु की (वेतु) शरण में जा (स्वाहा) पवित्र निश्छल भावनाओं के साथ।

याद रख (सजूः देवेन सवित्रा) दिव्य गुणों के भण्डार तुझे पैदा करने वाले तेरे प्रभु तेरे साथ हैं, (सजूः उषसे इन्द्रवत्या) वे नई रोशनी की किरणों के साथ- नए प्रभात के साथ तेरे पास ही हैं (जुषाणः) सबकी मदद करने वाले (सूर्यः) जीवन के आधार प्रभुवर की (वेतु) शरण में जा (स्वाहा) निर्विकार भाव से अपना सब कुछ उनको सोंप दे ।।

सवितृ= जनक, उत्पादक, फल देने वाला। सजूः= साथी, हरकदम-हर पल साथ देने वाला। अंधकार= शारीरिक, मानसिक, घरेलू, आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक संकट। उषा= अंधकार को समाप्त करने वाली ऐसी सुखद रोशनी जिसकी कोमल, गुनगुनी किरणें प्राणियों में नई

ऊर्जा और उमंग भर देती हैं। जुषाण:= सबके साथ प्रीति करने वाला, मददगार। वेतु= प्रभु की शरण में।

उपप्रयन्तोऽअध्वरं मंत्रं वोचेमाग्नये। आरेऽअस्मे च शृण्वते ।।11।।

प्रभु के (उप प्रयन्त:) समीप जाते हुए (अध्वर:-ध्वरति हिंसा कर्मा तत्प्रतिषेधो निपातः अहिंस्र-निरु.) हिंसा और कुटिलता से परे (मन्त्रंवोचेम्) पवित्र मन से याद करो (अग्नये) परम प्रभु को। क्योंकि वे (आरे अस्मे च) दूर हों अथवा पास (शृण्वते) हर जगह हमारी पुकार सुनने वाले हैं।।

अग्निर्मूर्द्धा दिव: ककुत्पतिः पृथिव्याऽअयम्। अपाꣳरेताꣳसि जिन्वति ।।12।।

(अग्नि: मूर्द्धा) निरंतर आगे बढ़ने वाला- यज्ञमय कार्य करने वाला (दिव:) प्रकाश से भर जाता है- आलोकित हो जाता है, (ककुत्पति:) पवित्रता के शिखर पर पहुँचने का अधिकारी हो जाता है और (पृथिव्या अयम्) पृथ्वी के समान परोपकारी, विशाल हृदय, उदार हो जाता है।

इसलिए हे मानव तू (अपाम्) जीवन का स्रोत, ऊष्मा को शांत करने वाला, सारे कष्टों को आत्मसात करने वाला निरन्तर बढ़ने वाला (रेतांसि) अपनी पूरी सामर्थ्य से (जिन्वति) जीवन बिताने वाला बन।।

उभा वामिन्द्राग्नीऽआहुवध्याऽउभा राधस: सह मादयध्यै। उभा दाताराविषाꣳ रयीणामुभा वाजस्य सातये हुवे

वाम् ।।13।।

(उभा) दोनो (वाम्) विपरीत प्रकृति के होते हुए (इन्द्र अग्नि) प्रभु का आशीर्वाद और इंसान की कड़ी मेहनत– तकदीर और तदवीर जब मिल जाते हैं तो (आहुवध्या) जीवन को सुखमय बना देते हैं बशर्ते इरादे नेक हों, (उभा) दोनों (राधसः) जीवन में सफलता (सह मादयध्वै) के साथ आनन्द देते हैं।

(उभा) दोनों (दातारौ) देने वाले है (इषाम रयीणाम) इच्छित सुख और सम्पत्ति (उभा) दोनों की (वाजस्य) गुणात्मक ताकत (सात ये) होने से (हुवे वाम्) जीवन सुन्दर– एवं आनन्द मय हो जाता है।।

अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातोऽअरोचथाः। तं जानन्नग्नऽ आरोहाथा नो वर्द्धया रयिम् ।।14।।

(अयं ते) यह तेरा (योनि) मनुष्य जन्म (ऋत्वियः) प्रभु की कृपा से (यतः) बड़े सौभाग्य से उन पशु योनियों से परे (जातः) हुआ है। (अरोचथाः) शुभ परोपकारी कार्यों के करने हेतु (तं) उसे (जानन्) जानते हुए (अग्ने) हे कर्मयोगी (आरोह) प्रभु के बताए पवित्र कार्यो में लग और ऊपर उठ ताकि तेरा मुक्ति का मार्ग प्रशस्त हो (अथ) अब समय और अवसर मिला है (नः वर्धय रयिम्) इसे व्यर्थ ना जाने दे और, पूरी तरह सदुपयोग में ला।।

अयमिह प्रथमो धायि धातृभिर्होता यजिष्ठोऽ अध्वरेष्वीड्यः। यमप्नवानो भृगवो विरुरुचुर्वनेषु चित्रं विभ्वं विशेविशे ।।15।।

(अयम् इह) अपने उन पुण्य कर्मों से (प्रथमों) जो पहले (धायि) तूने किए हुए हैं (धातृभिः) परोपकारी कार्यों के द्वारा (होता) प्रभु तुझे (यजिष्ठः) अपने सन्निकट पाते हैं, अपना प्रिय पात्र मानते हैं, (अध्वरेषु ईडयः) और उनको भी जो किसी का अहित किए बिना सेवा कार्य करते है।

तथा (यम्) जो (अप्नवानः- अप्न इति कर्म नाम) उत्तम कर्मों वाले (भृगवो) ज्ञानी और तपस्वी हैं (विरुरुच-विदीपयन्ति-द.) अपने जीवन को ज्ञान से उद्दीप्त करते हैं (वनेषु) और निस्वार्थ रूप से (चित्रम्) ज्ञान को फैलाते हैं- बाँटते हैं-दान देते हैं (विशे विशे) दुनियाँ भर में।।

अस्य प्रत्नामनु द्युतꣳ शुक्रं दुदुह्रेऽअह्रयः। पयः सहस्रसामृषिम् ।।16।।

(अस्य) इस वेद ज्ञान को (प्रत्नाम्) हमेशा के (अनु) अनुसार (द्युतं शुक्रं) मानव जीवन को पवित्र करने वाली ज्ञान ज्योति (दुदुह्रे) कहते आए हैं (अह्रयः) विद्याओं से पारंगत ज्ञानी लोग तथा (पयः) अमृत समान (सहस्रसाम्) हजारों कल्याण चाहने वाले (ऋषिम्) ऋषि मुनि लोग।।

तनूपाऽअग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दाऽअग्नेऽस्यायुर्मे देहि वर्च्चोदाऽअग्नेऽसि वर्च्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वाऽऊनं तन्मऽआपृण ।।17।।

(अग्ने) हे परम प्रभु (तनूपा असि) आप हमारे इस शरीर के

रक्षक हो अतः (तन्वम् मे पाहि) हमारे शरीर की रक्षा करना (आयुर्दाऽअग्ने असि) प्रभु आप हमारे जीवन के रक्षक हो (आयुः में देहि) आप हमें दीर्घ जीवी बनाऐं। (वर्चोदा अग्ने असि) प्रभु आप रूप और कान्ति देने वाले हो (वर्चो मे देहि) मुझे भी ऐसा रूप दे दो, ऐसी कान्ति से भर दो कि मै सबसे प्यारा हो जाऊँ। (अग्ने) हे शक्ति पुञ्ज (यत् मे तन्वाऊनं) मेरे में जो भी कमियाँ हों (तन्म आपृण) उन सब को मिटा दो।।

इन्धानास्त्वा शतꣳ हिमा द्युमन्तꣳ समिधीमहि। वयस्वन्तो वयस्कृतꣳ सहस्वन्तः सहस्कृतम्। अग्ने सपत्नदम्भनमदब्धासोऽअदाभ्यम्। चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय।।18।।

(इन्धानाः) मैं अपने हृदय-मन्दिर में (त्वा) आपकी (शतं हिमाः) सौ वर्ष पर्यन्त (द्युमन्तम्) ज्योति जलाता रहूँ अर्थात् मै आपको कभी ना भूलूं (समिधीमहि) और हमेशा इसे याद रक्खूँ और प्रज्वलित करता रहूँ।

(वयस्वन्तः) उत्तम आयु पाने वाला मैं (वयस्कृते) आयु के अनुसार ही उत्तम व्यवहार करुँ, (सहस्वन्तः) उत्तम सहनशक्ति वाला धैर्यवान (सहस्कृतम्) अपनी सहन शक्ति और धैर्य के साथ व्यवहार करुँ।

(अग्ने) हे परम शक्ति (सपत्नदम्भनम्) अपने शत्रुओं-काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ और मत्सर (अदब्धासः) जिनको पराजित करना

मुश्किल है, (अदाभ्यम्) आपकी कृपा से पराजित कर सकूँ।

(चित्+र+वसुः) आपके इस श्रेष्ठ इंसान का (स्वस्ति) कल्याण हो (ते पारम् अशीय) आपकी परम कृपा से।।

सं त्वमग्ने सूर्यस्य वर्च्चसागथाः समृषीणाᳬं स्तुतेन। सं प्रियेण धाम्ना समहमामुषा सं वर्च्चसा संप्रजया सᳬं रायस्पोषेण ग्मिषीय।।19।।

(सं त्वम्) आपके साथ जुड़कर (अग्ने) हे प्रभु (सूर्यस्य वर्चसा) आप की शिक्षाओं से भरा ज्ञान का प्रकाश (आगथाः) हमें प्राप्त हो, वस्तुतः (संऋषीगाम्) सही रूप में परम ज्ञानी और ऋषी लोग ही (स्तुतेन) आपको पा सकते हैं।

(सं प्रियेण धाम्ना) सही रूप में हम आपके प्रिय बनें, (सम् अहम् आमुषा) हमारा जीवन सार्थक हो (सम् वर्चसा) सही रूप से आलोकित हों (सम् प्रजया), सही और उत्तम हमारी सन्तानें हों और (सम् रायस्पोषेण) सही रूप की ही हमारी धन-सम्पत्ति हो, (ग्मिषीय) हम इन सब के साथ ही जिऐं।।

अन्ध स्थान्धो वो भक्षीय महस्थ महो वो भक्षीयोर्ज्जस्थोर्ज्जं वो भक्षीय रायस्पोषस्थ रायस्पोषं वो भक्षीय।।20।।

(अन्धः स्थ) हे प्रभुवर हम तो अनजान है, उचित-अनुचित कुछ भी नहीं जानते (अन्धः वः भक्षीय मह स्थ) हम अञ्जान जो कुछ भी खाऐं खाने योग्य-भक्षीय हो-जो किसी को कष्ट पहुँचाए बिना प्राप्त हो;

अन्न-अनाज, दालें, फल, फूल, सब्जियाँ, (उच्छिष्ट) दूध, दही, घी, इत्यादि (महः वः भक्षीय ऊर्जस्थ) उस भोजन से हम सही मायने में उचित ऊर्जा प्राप्त करें और (उर्ज वः भक्षीय रायस्पोष स्थ) उस ऊर्जा से हम सही मायने में उचित पाने योग्य धन ही कमाऐं (रायस्पोषं वः भक्षीय) उस धन से हम सही मायने में उचित कार्य करते हुए अपना जीवन व्यतीत करें।।

नोटः यह मन्त्र श्लेषालंकार में होने से भक्षीय शब्द के अनेक अर्थ हुए हैं।

रेवती रमध्वमस्मिन्योनावस्मिन् गोष्ठेऽस्मिंल्लोकेऽस्मिन् क्षये। इहैव स्त मापगात।।21।।

(रेवती-रयिर्विद्यते यासाम्) परम ऐश्वर्य के स्वामी, धन, सम्पत्ति, सम्पदा और विद्या के भण्डार (रमध्वम्) आप का वास बना रहे- आशीर्वाद बना रहे (अस्मिन् योनौ) आपके इस पुत्र के जीवन में। (अस्मिन गोष्ठे) इसके विचारों में-मन में (अस्मिन् लोके) इसके संसार में (अस्मिन् क्षये) इसके घर में (इह एव स्त) आप हमेशा हमारे बने रहें (मा अपगात) कभी भी हमसे दूर ना जाऐं।।

रयः= प्रवाह, बल, वेग, नदी की धारा। क्षयः= घर, निवास, आवास, हानि, पतन, विनाश, टीबी

सꣳहितासि विश्वरूप्यूर्जा माविश गौपत्येन। उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्द्धिया वयम्। नमो भरंतऽएमसि।।22।।

(संहिता असि= सम्-सम्यक्तया, हिता-स्थापित हुई, हितकारी) सबके हित के लिए स्थापित हुई वेद वाणी, आदिकाल में

अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा ऋषियों द्वारा शुभ वाणियों का संग्रह (विश्वरुपा) संसार भर के लिए मार्ग दर्शन कराने वाली (ऊर्जा) प्राण शक्ति (मा आविश) मुझ में समाहित हो जाए (गौपत्येन = गावः इन्द्रियाणि) और मेरी इन्द्रियों को पवित्र कर दे। (उपत्वा) आपके समीप (अग्ने) हे प्रभुवर (दिवे दिवे) दिनों दिन (दोषा वस्तः) दोषों की समाप्ति हो, (धिया वयम) हमारी बुद्धि (नमः भरन्तः एमसि) ज्ञान को प्राप्त करे और मैं विनम्र हो जाऊँ।।

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्। वर्द्धमानꣳ स्वे दमे ।।23।।

(राजन्तम्= राजृदीप्तौ) संसार भर में जो कुछ भी अच्छा-और उन्नति के पथ पर ले जाने वाला है (अध्वराणां गोपाम्) अहिंसक और सृजनात्मक पवित्र शुभ वेदवाणियों का ही (ऋतस्य) सच में (दीदिविम्) प्रकाशक है।

हे मानव (वर्धमानम्) आगे बढ़ते जाना (स्वे दमे) सही रूप में इसी मार्ग पर।।

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये ।।24।।

(सः) आप (नः) हमें (पिताइव) पिता के समान (सूनवे) संरक्षण दो, (अग्ने सूपायनो भव) उन्नति के पथ पर सुमार्ग पर ले जाने वाले पथ प्रदर्शक बनो। (सचस्वा नः स्वस्तये) ताकि सदाचारी, आदर्श, कल्यांणकारी हमारा जीवन हो जाऐ।।

अग्ने त्वं नोऽअन्तमऽउत त्राता शिवोभवा वरूथ्यः वसुरग्निर्वसुश्रवाऽअच्छा नक्षि द्युमत्तमꣳ रयिं दाः ।।25।।

(अग्ने) हे प्रकाशमय प्रभो (त्वम्) आप (नः) हमारे (अन्तमः) अन्त तक के सखा हो (उत) और (त्राता) रक्षक हो, (शिवो) कल्याणकारी, सौभाग्यशाली (भवा) हो, (वरूथ्यः) मेरे लिए कवच की तरह बचाते हुए (वसुः अग्नि) एक उन्नतिशील व्यक्ति को (वसुः श्रवा) ज्ञान से भरपूर इंसान को (अच्छा नक्षि) सन्मार्ग की (द्युमउत्तमम्) आलोकित श्रेष्ठ (रयिम दाः) राह दिखाओ।।

वरूथम्= कवच, बख्तर, ढाल

तं त्वा शोचिष्ठ दीदिवः सुम्नाय नूनमीमहे सखिभ्यः। स नो बोधि श्रुधी हवमुरुष्याणोऽअघायतः समस्मात् ।।26।।

हम (तं त्वा) उन आपके (शोचिष्ठ) जीवन पवित्र करने वाले (दीदिवः) और आलोकित करने वाले (सुम्नाय) सुखों के लिये (नूनम् ईमहे) निश्चय से प्रार्थी हैं (सखिभ्यः) हे सखा। (सः) आप (नः) हमें (बोधि श्रुधि) परम ज्ञान से भर दें और (हवनं उरुष्य) बचाते रहें (अणों अघायतः) छोटे से छोटे पाप से (समस्मात्) हम सब को।

इडऽएह्यदितऽएहि काम्याऽएत। मयि वः कामधरणं भूयात् ।।27।।

(इड एहि) चारों वेदों की ऋचाऐं मुझे प्राप्त हों; (अदित एहि) इन वाणियों की शिक्षाऐं मुझ में आत्मसात हों जाऐं (काम्याः एत) ये

वाणियाँ कामना के योग्य हैं। (मयि वः) मेरा जीवन इनकी शिक्षाओं से (कामधरणं भूयात्) बहुत ही सुन्दर हो जाए, आलोकित हो जाए, आनन्द से भरा हो जाऐ।।

अदितिः= वाणी। इडा= पृथ्वी, वेद वाणी। एहि= मुझे प्राप्त हों। काम्या= कामना के योग्य। कामधरणं= खूबसूरती से भरा, आनन्द से ओतप्रोत, आलोकित।

सोमानꣳ स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते। कक्षीवन्तं यऽऔशिजः ।।28।।

हे प्रभु! (सोमानं स्वरणं कृणुहि) मुझे सौम्य स्वभाव और उत्तमगति अर्थात् कर्म वाला बनाओ; (ब्रह्मणस्पते) ज्ञान से भरा हुआ (कक्षीवन्त) निश्चय के साथ (यः औशिजः) जो अत्यप्त मेधा से भरा हुआ हो।।

स्वरणं= अच्छे ताल मेल वाला; उत्तम गतिवाला।

यो रेवान् योऽअमीवहा वसुवित् पुष्टिवर्द्धनः। स नः सिषक्तु यस्तुरः ।।29।।

(यः रेवान्) जो ज्ञान रूप धन है, (यः अमीवहा) जो सारे दुखों का नाशक है (वसुवित् पुष्टि वर्धनः) और संसार के श्रेष्ठ तम् लोगों के बराबर बल बढ़ाने वाला है। (स) वह (नः) हमें (सिषक्तु) प्राप्त हो, (यः तुरः) अति शीघ्र।।

वसुः= श्रेष्ठ प्राणी। वसुवित= श्रेष्ठ प्राणी जैसा।

मा नः शꣳसोऽअररुषो धूर्तिः प्रणङ्मर्त्यस्य। रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ।।30।।

(मा नः) हमें मत सिखाना (शंसः) बातें (अररुषः) कृपण बनने की, (धूर्तिः) धूर्त बनने की (प्रणङ्.) जो नष्ट कर देने वाली हों (मर्त्यस्य) मनुष्य को। (रक्षः अणु ब्रह्मणस्पते) छोटा बनाने वाली इन बातों से हमें बचाना ज्ञान के भण्डार प्रभु।।

धूर्तः= चालाक, शठ, बदमाश, मक्कार, जालसाज, ठग, उचक्का, जुआरी, रसिया। अणु= बहुत छोटा।

महि त्रीणामवोऽस्तु द्युक्षं मित्रस्यार्यम्णः। दुराधर्षं वरुणस्य ।।31।।

(महि) महान आदर के योग्य बनाता है (त्रीणाम्) तीन का (अवः) मिलाप (अस्तु) हो जाना (द्युक्षं) ज्ञान की रोशनी में रहना, (मित्रस्य अर्यम्णः) मित्रों का आर्यत्व और (दुराधर्षम् वरुणस्य) श्रेष्ठता वाला पराक्रम-बल।।

आर्यत्व= श्रेष्ठ गुणों को धारण करना, दुर्गणों का नाश, परोपकारी होना, कृपण ना होना, हिंसक ना होना ये आर्यत्व के गुण हैं। दुर+ आधर्ष= जिस पर आक्रमण करना कठिन हो, जिस का लेश मात्र भी पराभव ना हो।

नहि तेषाममा चन नाध्वसु वारणेषु। ईशे रिपुरघशꣳसः ।।32।।

(नहि) नहीं होता (तेषाम्) ऐसे लोगों का (अमाचन) घर में, (न

अध्वसु) घर से बाहर मार्गों में (अरणेषु वा) या फिर वनों के एकान्त में। (ईशे) प्रबल (रिपुः) दुष्मन (अघशंसः) जो हानि पहुँचा सके।।

तेषाम्= ऐसे लोगों का जो ज्ञानी हैं, जिनके मित्र श्रेष्ठ गुणों वाले हैं और जिनके पास अतुल्य बाहुबल है–पराक्रमी हैं।

ते हि पुत्रासोऽअदितेः प्रजीवसे मर्त्याय। ज्योतिर्यच्छन्त्यजस्रम ।।33।।

(ते) वे (हि) निश्चय से (पुत्रासः) सच्चे सपूत हैं जो (अदिते) सुशिक्षित हैं–वेद के ज्ञान से भरपूर हैं, (प्रजीवसे) वे आदर्श हैं, उन जैसा बनने के लिए (मर्त्याय) संसार में लोगों के लिए क्योंकि वे (ज्योतिः) ज्ञान के प्रकाश को (यच्छन्ति) फैलाते हैं (अजस्रम) निरन्तर।।

प्र= आगे का, आगे की ओर, पहले, अत्यन्त, धातुओं के पूर्व उपसर्ग है जैसे प्रबल, प्रवाह।

कदाचन स्तरीरसि नेन्द्र सश्चसि दाशुषे। उपोपेन्नु मघवन् भूयऽइन्नु ते दानं देवस्य पृच्यते ।।34।।

(कदाचन) कभी भी (स्तरीः) हिंसा मन–वचन–कर्म से बुरा करने वाले (न असि) नहीं बनना (इन्द्र) ऐश्वर्यवान –समृद्धिवान–शक्ति सम्पन्न तुम (सश्चसि) दाता बनना (दाशुषे) निस्वार्थ भाव के साथ। हे मानव (उप उपइत् नु) मै तेरे बहुत नजदीक हूँ; (मघवन्) पाप से रहित (भूयः इत् नु) इस तरह किया गया (ते) तेरा (दानम्) दान (देवस्य) दैवत्व का (प्रच्यते) प्रतीक माना जाएगा।।

हिंसा= व्यापक शब्द है जिसमें वे सभी बाते हिंसा मानी गई हैं– जो

किसी को नुकसान पहुँचाऐं जैसे किसी का वध करना या किसी का जीवन दूभर कर देना चाहे वे शारीरिक मानसिक, सामाजिक अथवा आर्थिक हों। क्योंकि किसी भी प्रकार से दूसरे को भारी नुकसान पहुँचाना एक तरह से उसे मारने के ही समान है।

तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ।।35।।

(तत्) प्रभुवर (सवितुः) जनक हैं (वरेण्यं) सर्वश्रेष्ठ हैं (देवस्य) दिव्य शक्तियों के भण्डार (धीमहि) शरण में आने वाले के परम हितैषी। (धियः) बुद्धि मन और आत्मा (यः) इस (नः) प्राणी की (प्रचोदयात्) हमेशा जाग्रत करते रहना प्रभु।।

परि ते दूडभो रथोऽस्मांऽअश्नोतु विश्वतः। येन रक्षसि दाशुषः ।।36।।

(परि ते) चारों ओर से आपकी (दूडभः) अक्षुण्ण (रथो) उपस्थिति (अस्मान्) हमें (अश्नोतु विश्वतः) सारे जगत में प्रतीत होती है।

(येन) इस भरोसे के साथ (रक्षसि) रक्षा करते हो (दाशुषः) अपने भक्तों की।।

दूडभः= नष्ट न होने योग्य। अश्नोतु= व्याप्त करे। दाशुषः= आत्म समर्पण करने वाले की, भक्तों की, प्रभु पर भरोसा करने वालों की। रथ= उपस्थित होने का प्रतीक, ठीक वैसे ही जैसे कुछ समय पहले ठाकुर का लठ्ठ ठाकुर की उपस्थिति का प्रतीक था।

भूर्भूवः स्वः सुप्रजाः प्रजाभिः स्याꣳ सुवीरो वीरैः सुपोषः पोषैः। नर्य प्रजां मे पाहि शꣳस्य पशून्मे पाह्यथर्य पितुं मे पाहि।।37।।

हे प्रभु (भूः भुवः स्वः) सत्य वादी, शिव-कल्याणकारी, सुन्दर (सुप्रजाः प्रजाभिः) सद्गुणों वाली सन्तान (स्याम्) हों, (सुवीरो वीरैः) उत्तम गुणों वाले वीरत्व से युक्त वीर, (सुपोषः पोषैः) उत्तम गुणों वाले भोज्य पदार्थों से पुष्ट हुए (नर्य) सबका भला करने वाली (प्रजा में पाहि) मेरी सन्तानें हो; (शंस्य पशून) पशु वृत्ति का शमन करते हुए (मे पाहि) मेरी सन्तान हों और (अथर्य पितुं मे पाहि) दृढ़ निश्चयी, परम पिता, मेरी सन्तानें हों।।

सुप्रजाः= उत्तम गुणों से भरपूर। सुवीरो= ऐसा वीर जो वीर तो हो परन्तु उस वीरता का गलत तरह से लाभ न लेता हो। सुपोषः= ऐसे भोज्य पदार्थ लेता हो, जिनसे शरीर तो पुष्ट हो परन्तु किसी की हिंसा न हो। पशुवृत्ति= पशु वह है जिसे दिन रात केवल अपना पेट भरने की चिन्ता रहती है चाहे इसके लिए किसी का वध ही क्यों न करना पड़े। मरे हुए का भी माँस नोचने में झिझक न हो।

आगन्म विश्ववेदसमस्मभ्यं वसुवित्तमम्। अग्ने सम्राडभि द्युम्नमभि सहऽआयच्छस्व।।38।।

(आगन्म) प्राप्त हो (विश्ववेदसम्) संसार भर का ज्ञान (अस्मभ्यं) हमारे लिए (वसु वित्ततम्) श्रेष्ठ मानव की तरह बनने के लिए।

और इस (अग्ने सम्राट) सर्वोत्तम ज्ञान के प्रकाश से (अभि द्युम्नम्) रोशन कर दें दुनियाँ को (अभि सह आयच्छस्व) दुनियाँ भर के लोगों के सहयोग और प्रयत्न से।।

नोटः- अग्निः = यहाँ अग्नि शब्द ज्ञान की ज्योति के लिए प्रयोग किया गया है। अग्नि सम्राट = ज्ञान की महाशक्ति। अभि= दुनियाँ। आयच्छस्व= प्रयत्न, कोशिश, चतुराई, बुद्धिमानी।

अयमग्निर्गृहपतिर्गार्हपत्यः प्रजाया वसुवित्तमः। अग्ने गृहपतेऽभि द्युम्नमभि सहऽआयच्छस्व ।।39।।

(अयं अग्निः) यह ज्ञान की ज्योति (गृहपतिः) गृहपति, पिता द्वारा (गार्हपत्यः प्रजाया) अपनी सन्तानों को सोंपी जाती है, (वसु वित्तमम्) सम्पत्ति के तौर पर उनको श्रेष्ठ इंसान बनाने के हेतु

(अग्ने गृहपते) पिता द्वारा दिये ज्ञान से (अभि द्युम्नम्) दुनियाँ भर को रोशन कर दे (अभिसहऽआयच्छस्व) सभी के प्रयत्न से।।

अयमग्निः पुरीष्यो रयिमान् पुष्टिवर्द्धनः। अग्ने पुरीष्याभि द्युम्नमभि सहऽआयच्छस्व ।।40।।

(अयमग्नि) यह ज्ञान की ज्योति (पुरीष्यः) सर्वश्रेष्ठ है, (रयिमान) सबसे उत्तम धन है (पुष्टिवर्धनः) बहुत ताकत देता है।

(अग्ने पुरीष्य अभि) ज्ञान के द्वारा मनुष्य सारे संसार में श्रेष्ठ हो जाता है (द्युम्नम् अभि) संसार मे प्रसिद्धि पाता है (सहआयच्छस्व) अपनी बुद्धिमत्ता और चतुराई के कारण।।

गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्ज्जं विभ्रतऽएमसि। ऊर्ज्जं बिभ्रद्वः समुनाः सुमेधा गृहानैमि मनसा मोदमानः ।।41।।

(गृहा) ज्ञान से आलोकित लोगो (मा बिभीत) भय को छोड़ दो (मा वेपध्वम्) डर कर घबराओ भी मत (उर्जम्) यह ताकत (बिभ्रत् आ इमसि) तपा कर मजूबती प्रदान करती है (उर्जम् बिभ्रत वः) ज्ञान से तपा हुआ वह (सुमनाः) उत्तम मन वाला हो जाता है (सुमेधा) ज्ञानी, विद्वान जाना जाता है (गृहान् एमि) समाज में प्रसिद्धि पाता है (मनसा मोदमानः) मन और आत्मिक आनन्द से सराबोर हो जाता है।।

नोटः- मेधा का अर्थ है ज्ञान-विज्ञान से भरा हुआ। यहाँ सुमेधा शब्द की भावना है कि ऐसा ज्ञानी जिसकी विद्वत्ता अच्छे उद्देश्य से समाज, देश और लोकहित कार्यों में लगे, केवल स्वार्थ परक न हो। बिभ्रत= तपाना, शुद्ध करना, पवित्र करना। मनसा= अन्तरमन से। मोद= खुशी

येषामद्ध्येति प्रवसन्येषु सौमनसो बहुः। गृहानुपह्वयामहे ते नो जानन्तु जानतः ।।42।।

(येषाम्) जो भी (अध्येति) वेद की शिक्षाओं को मन लगाकर पढ़ता है (प्रवसन) इनमें रम जाता है (येषु) और जो (सौमनसो) लगन से, अच्छे मन से (बहुः) बहुत कोशिश करता है। (गृहान् उपह्वयामहे) ऐसे लोगों का परिवार प्रसिद्धि पाता है, लोग पूछते हैं (ते) ऐसे लोग (नः) हमारे लिए (जानन्तु जानतः) जानने योग्य हो जाते हैं।।

उपहूताऽइह गावऽउपहूता ऽ अजावयः। अथो ऽ अन्नस्य

कीलालऽउपहूतो गृहेषु नः। क्षेमाय वः शांत्यै प्रपद्ये शिवꣳ शग्मꣳ शन्योः शन्योः ।।43।।

(उपहूता) पुकारा जाता है (इह) ऐसा इंसान (गाव) गाय के समान-अमृत तुल्य दूध देने वाला (उपहूता) पुकारा जाता है (अजावयः) बकरी के समान-गुणकारी-कल्याण करने वाला। (अथ उ)और वह (अन्नस्य) अन्न का (कीलाल) रस (उपहूतो) पुकारा जाता है (गृहषु नः) हमारे घरों में। (क्षेमाय) कुशल क्षेम के लिए (वः) हमें (शान्त्यै प्रपद्ये) शान्ति देने के लिए (शिवं) कल्याणकारी (शग्मम्) ऊँचा उठाने के लिए (शंयोः शंयोः) सारे कष्टों को दूर करने के लिए।।

नोटः- स्वार्थी लोग तो केवल अन्न के कीड़े मात्र हैं- रस नहीं। इह = यहाँ इह का मर्म है विद्वान, ज्ञान-विज्ञान का ज्ञाता, वेदों की शिक्षा से पारंगत।

प्र घासिनो हवामहे मरुतश्च रिशादसः। करम्भेण सजोषसः ।।44।।

(प्रघासिनो) उन्नत विचारों वाले (हवा महे) बुलाते हैं (मरुतः) ऋषिवरों, विद्वान, ज्ञानी-विज्ञानी लोगों को (च) और (रिशादसः) हिंसा की प्रवृत्ति छोड़ देते है- दूसरों का बुरा चाहने, कष्ट देने, नुकसान पहुँचाने की सोच को त्याग देते हैं। (करम्भेण) उत्तम विचारों को (सजोषसः) प्रीतिपूर्वक अपनाते हैं।।

नोटः- हिंसा= शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक, लौकिक, पारलौकिक यदि कष्ट प्रदान करे तो सभी प्रकार की

हिंसा–हिंसा हैं। मरुत:= ऋषिवर हवा के झोंके की तरह आते हैं और नवस्फूर्ति देकर चले भी जाते हैं– एक जगह रूकते नहीं इसीलिए उनको मरुत की संज्ञा दी गई।

यद ग्रामे यदरण्ये यत् सभायां यदिन्द्रिये। यदेनश्चकृमा वयमिदं तदवयजामहे स्वाहा ।।45।।

(यत् ग्रामे) जो ग्राम–नगर में, (यत् अरण्ये) जो वनों में, (यत् सभायां) जो सभाओं में (यत् इन्द्रिये) जो कर्मेन्द्रियों से (यत् एन:) जो गलतियाँ–अपराध (चकृमा) कर बैठते है (वयं इदं) हम इनको (तत् अवयजामहे स्वाहा) उन सद् कर्मो की शिक्षा–वेदों के ज्ञान और ज्ञानी जनों के सत्संग और शिक्षाओं को समर्पित भावना से लेने पर नहीं कर पाते।।

एनस्= पाप, अपराध, गलतियाँ, दोष, कुचेष्ठा, जुर्म, निंन्दा, कलंक।

मो षूणऽइन्द्राय पृत्सु देवैरस्ति हिष्मा ते शुष्मिन्नवया:। महश्चिद्यस्य मीढुषो यव्या हविष्मतो मरुतो वन्दते गीः ।।46।।

(मा उ) मत कर क्रोध (सु) थोड़ा सा भी (अणु) छोटे से भी छोटा (इन्द्र अत्र) पूरी ताकत से यहाँ (पृत्सु) इस बुरी आदत को वश में करले (देवै: अस्ति) दिव्य गुणों से युक्त हो जा (हिष्मा) दृढ़ निश्चय वाले (ते) तू अपने (शुष्मिन्) शत्रुओं को (अवया:) हर प्रकार से समाप्त कर दे।

(मह:चित्) महान है चित्त (यस्य) जिसका (मीढुष:) सुखों की वर्षा होती है (यव्या) दोषों का नाश करने पर (हविष्मत:) और अच्छे

गुण अपनाने से (मरुतः) संसार भर के श्रेष्ठ जन (वन्दते गीः) उसकी वन्दना करते हैं।।

नोटः- शुष्मिन्= शत्रु- (क) वाह्म- आक्रमणकारी, दुश्मन, आतंकवादी, देशद्रोही (ख) आन्तरिक- काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ और मत्सर अर्थात् निन्दा करना।

अक्रन् कर्म कर्मकृतः सह वाचा मयोभुवा। देवेभ्यः कर्म कृत्वास्तं प्रेत सचाभुवः ।।47।।

(अक्रन् कर्म) ना किए जाने वाले बुरे (कर्म कृतः) कर्म करने वाला (सह वाचा) वाणी के साथ बड़ बोला (मय अभुवा) रहस्य मय शब्दों का जाल बुनता है

और (देवेभ्यः कर्म कृत्वाः) देवतुल्य कार्य करने वाला (तं)उन सब लोगों को जो उसको अपना आदर्श मानते हैं (प्रेत स च आभुवः) मरणपर्यन्त अर्थात् जीवन भर आहिस्ता आहिस्ता प्रभु के समीप ले जाता है।।

आभुवः= ऊँचा उठाना।

अवभृथ निचुम्पुण निचेरुरसि निचुम्पुणः। अव देवैर्देवकृतमेनोऽयासिषमव मर्त्यैर्मर्त्यकृतं पुरुराव्णो देव रिषस्पाहि।।48।।

(अवभृथ) हे परोपकारी (निचुम्पुण- चोपति मन्द गच्छति) अपने कार्यो को बिना ढिंढ़ोरा पीट कर करने वाले (निचेरुः असि) तू सही रास्ते पर है (निचुम्पुणः) अपने सेवा कार्य चुपचाप किए जा।

(अव) निश्चय से (देवैः देवकृतम् एन) उत्तम लोगों द्वारा बताए गए ये मार्ग (अयासिषम्) सही रास्ता बताते हैं (मर्त्यैः मर्त्यकृतं) जबकि अनाड़ियों के द्वारा बताए गए रास्ते (पुरुराव्णो) दुख दायी हैं। (देव) हे देवतुल्य लोगो इनको (रिषः पाहि) दुष्कर्मों से बचाओ।।

अव्= रक्षा करना, बचाना। भृ= भरना, रखना, सहारा देना, पोषण करना, दूध पिलाना। जो अच्छे कर्म करता है वह अमर हो जाता है और जिसको उत्तम कर्म की ना तो जानकारी है और ना ही उन्हे कर पाता है वह तो मर्त्य है- मरे हुए के समान है।

पूर्णा दर्वि परा पत सुपूर्णा पुनरापत। वस्नेव विक्रीणावहाऽइषमूर्जꣳ शतक्रतो ।।49।।

(पूर्णा) भरा हुआ (दर्वि) कल्याण की भावना से किया गया कार्य (परापत) प्रभु की शरण में ले जाता है (सुपूर्णा) भर झोली प्रभु की कृपा-आशीष (पुनरापत) वापस लेकर आता है।

(वस्ना इव) मानो कुछ मूल्य देकर (विक्रीणावहै) बहुत कुछ मिलता है (इषं ऊर्जम्) ऐसी कामना बनाऐ रखना (शतक्रतो) महान बना देती है- परम आनन्द प्रदान करती है।।

देहि मे ददामि ते नि मे धेहि नि ते दधे। निहारं च हरासि मे निहारं निहराणि ते स्वाहा ।।50।।

(देहि मे) हे मानव तू मुझे अपना सब कुछ अपिर्त कर दे (ददामि ते) मैं भी तुझे बहुत कुछ दे दूँगा (नि मे धेहि) निश्चय से तू मुझे प्यार दे (नि ते दधे) निश्चय से मैं भी तुझे प्यार से भर दूँगा। (निहारं च हरासिमे) और

जो निश्चय से मुझे कुछ देता है (निहारं निहराणि ते स्वाहा) निश्चय से मैं उसे बहुत कुछ दे देता हूँ।।

(देहि मे)- तू मेरी शिक्षाओं का पालन करते हुए सत्कार्य कर-ऐसा मुझे दे। (ददामि ते) मेरा आशीर्वाद हमेशा तेरे साथ बना रहेगा।।

धे= प्यार करना। नि= निश्चय से। दध्= पकड़ना, धारण करना, पास रखना, उपहार देना।

अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाऽअधूषत। अस्तोषत स्वभानवो विप्रानविष्ठया मती योजान्विन्द ते हरी ।।51।।

(अक्षन्) सात्विक विचार रखने वाले-ज्ञानी (अमीमदन्त) संतृप्त लोग- सन्तुष्टि पाए जन (हि) नि सन्देह (अव) परे कर देते हैं (प्रियाः) मन को मोहने वाली भावनाओं को-काम और मोह को (अधूषत) अवधूत हो जाते हैं- वासनाओं से दूर हो जाते हैं।

(अस्तोषत) प्रभु में लीन हुए लोगों की (स्वभानवः) आत्मा पवित्र हो जाती है (विप्राः) परम आनन्द में विभोर होने वाले (नविष्ठया) प्रभु भक्ति में लीन (मती) मन और बुद्धि से (योजनु) अपने को जोड़ लेते हैं (इन्द्र) परम् प्रभु के साथ (ते हरी) वे प्रभुमय हो जाते हैं।।

अव= दूर, परे, फासले पर, नीचे।

सुसन्दृशं त्वा वयं मघवन् वंदिषीमहि। प्रनूनं पूर्णबंधुर स्तुतोयासि वशांऽअनु योजान्विन्द्र ते हरी ।।52।।

(सुसन्दृशम्) अत्यन्त सुन्दर मन-वचन-कर्म वाले (त्वा)

आपकी (वयं) हम सब (मघवन्) संसारी (वन्दिषी महि) वन्दना करते हैं।

(प्र नूनं) पहले ही नि सन्देह (पूर्णबन्धुर) छूट गए हैं लोक-लोकान्तरों के बन्धन जिसके (स्तुतः) वही स्तुति योग्य है (यः असि) चंचल मन को (वशान्) वश में करने के (अनु) पश्चात् जो (योजनु) जोड़ लेता है अपने आप को (इन्द्र) परम प्रभु के साथ (ते हरी) वह प्रभु भय हो जाता है।।

नूनम्= असंदिग्ध रूप से, निश्चय ही, निस्सन्देह। प्र= धातुओं के पूर्व उपसर्ग के रूप में लग कर इसका अर्थ है- आगे, आगे का, पहले। यः = जो चलता है, गतिमान है।

मनो न्वाह्वामहे नाराशꣳसेन स्तोमेन। पितॄणां च मन्मभिः ।।53।।

(मनः) मन को (नु) क्या (अह्वामहे) वश में कर लेने वाला (नार आशंस एन) व्यक्ति प्रशंसनीय हो जाता है? (स्तोमेन) स्तुति योग्य हो जाता है? (पितृणाम्) पिता एवं पूर्वजों का (च) और गुरूजनों का (मन्मभिः) सम्मान बढ़ाता है?

नु= प्रश्न वाचकता का द्योतक तथा संदेह एवं अनिश्चयात्मकता प्रकट करने वाला अव्यय।

आ नऽएतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे। ज्योक् च सूर्यं दृशे ।।54।।

(आ) हाँ (नः) हमारे लिए (एतु) वह प्रशंसनीय- सम्माननीय-

आदरणीय-स्तुति योग्य हो जाता है, (मनः) मन को (पुनः) हर तरह से (क्रत्वे दक्षाय) वश में कर लेने वाला (जीवसे) प्राणशक्ति को जागरूक कर लेता है, वह (ज्योक) दीर्घकाल तक (सूर्य दृशे) सूर्य के समान आलोकित हो जाता हैं।।

आ= विस्मयादि द्योतक अव्यय के रूप में प्रयुक्त होकर निम्नांकित अर्थ प्रकट करता है:- स्वीकृति 'हाँ' दया 'आह' पीड़ा या खेद जैसे 'हाहंत'। पुनः = फिर से, विश्वास के साथ।

पुनर्नः पितरो मनो ददातु दैव्यो जनः। जीवं व्रातꣳ सचेमहि।।55।।

(पुनः) फिर से बताते हैं (नः) हमारे लिए वह जो (पितरो मनः ददातु) पूर्वजों की शिक्षाओं में मन लगाता है (दैव्यो जनः) माता-पिता, गुरू जनों और ऋषियों के उपदेशों पर चलता है, (जीवं) उसी का जीवन (व्रातम्) धन्य (सचेमहि) हो जाता है।।

व्रातम= अच्छे व्रत धारण करने से जो फल मिलता है वह।

वयꣳ सोम व्रते तव मनस्तनूषु विभ्रतः। प्रजावन्तः सचेमहि।।56।।

(वयम्) हम सब (सोम) शान्ति का (व्रते) व्रत धारण करने पर (तव) इस (मनः) मन (तनूषु) और शरीर (विभ्रतः) से पवित्र हो जाते हैं।

(प्रजावन्तः) संसार भर के लोग अपने ही पुत्र -पुत्री, पौत्र-पौत्री के समान (सचेमहि) प्रतीत होने लगते हैं।।

व्रती= मन, वचन और कर्मो से जो उत्तम गुणों को अपनाने के लिए दृढ़ निश्चय कर लेता है।

एष ते रुद्र भागः सह स्वस्त्राम्बिकया तं जुषस्व। स्वाहैष ते रुद्र भागऽआखुस्ते पशुः ।।57।।

(एष ते) जब भी तेरी (रुद्र भागः) कठिन परीक्षा आए (सह स्वस्त्रा अम्बिका) अपने अर्जित ज्ञान और वेद की शिक्षाओं के द्वारा (तं) उसका (जुषस्व) प्रसन्नता से सामना कर।

(स्वाहा एष) यह कल्याण भावना से भरी शिक्षाऐं (ते) तेरी (रुद्र भागः) कठिन परीक्षा के समय (आखुः= आखमति=अवदारयति) सब दोषों को दूर कर (ते) तुझे (पशुः) पशुता से बचाऐंगी।।

रुद्र= रूला देने वाला। सह= सहित। स्वस्त्रा= (सु+अस्) उत्तमता से सारे दोषों को परे फैंकने वाली। अम्बिका= माता, भद्र महिला। नोटः यहाँ अम्बिका शब्द वेद की शिक्षाओं के लिए प्रयोग किया है। पशु= पशुता का अर्थ है केवल अपना पेट भरने का दिन रात प्रयत्न करते रहना इसके लिए किसी को हानि पहुँचाना अथवा उसका वध ही क्यों ना करना पड़े तो करना। मरे हुए में से भी माँस नोच कर खा लेना अर्थात् दीन-हीन से भी उसका सर्वस्व छीन लेना।

अव रुद्रमदीमह्यव देवं त्र्यम्बकम्। यथा नो वस्यसस्करद्यथा नः श्रेयसस्करद्यथा नो व्यवसाययात् ।।58।।

(अव रुद्रे) निश्चय से यह उत्तम शिक्षाऐं कठिन परीक्षा के समय (अदीमहि= डीङ्. क्षये अवक्षाय येन-द०) हमारे दोषों का नाश करके

(अव) अवश्य ही (देवं) दिव्यगुण (त्र्यम्बकम्)= त्रि + अम्बक= ज्ञान+ कर्म + भक्ति) उत्तम ज्ञान, विद्वता के साथ कर्म और प्रभु पर अगाध विश्वास हमें प्रदान करती हैं। (यथा नः) जिनसे हम (वस्यसः करत्) उत्तम जीवन वाले बनते हैं, (यथा नः) जिनसे हम (श्रेयसः करत्) श्रेष्ठ ख्यातिवान बनते हैं, (यथा नः) जिनसे हम (व्यवसाय यात्) अपने उद्देश्यों-कर्त्तव्यों में खरे उतरते हैं।।

यात= गुजरा हुआ, गया हुआ, विसर्जित।

भेषजमसि भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजम्। सुखं मेषाय मेष्यै ।।59।।

(भेषजम् असि भेषजम्) लाख दवाओं की एक दवा है (गवेः) उत्तम शिक्षा-वेदवाणी (अश्वाय पुरूषाय भेषजम्) श्रेष्ठ जनों- बलवानों के पुरूषार्थ की दवा है (सुखम्) सुख की (एषायम्) कामनाओं तक (एष्यै) पहुँचाने के लिए।।

गौ= वेदवाणी के लिए बहुत जगह प्रयुक्त है। अश्व= ताकत, पुरुषार्थ का द्योतक है जैसे अश्व मेध यज्ञ का अर्थ है संसार में अपनी ताकत का लोहा मनवाना। एषा (इष्+अ+टाप) इच्छा, कामना। एष= (एषति) जाना, पहुँचना, शीघ्रता से जाना, दौड़कर जाना।

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्। त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पतिवेदनम्। उर्वारुकमिव बन्धनादितो मुक्षीय मामुतः ।।60।।

भाग 1 (त्र्यम्बकं) ज्ञान+कर्म+भक्ति; उत्तम ज्ञान, वेदों की

शिक्षाऐं और उन के अनुरूप बताऐ हुए कर्म और प्रभु में अगाधश्रृद्धा (यजामहे) अपनाने के योग्य है क्योंकि ये (सुगन्धिम् पुष्टि वर्धनम्) स्वर्गिक आनन्द प्रदान करते हुए आत्मिक बल को इतना बढ़ा देते हैं कि उसके पश्चात् (उर्वारुकम् इव बन्धनात्) जैसे खीरा पक जाने पर अपनी डाली से स्वयं ही अलग हो जाता है ठीक उसी तरह (मृत्योः मुक्षीय) मरणशील मनुष्य भी मृत्यु के भय से मुक्त होकर (मा अमृतात्) अमरत्व प्राप्त करता है, अर्थात् मृत्यु के भय से निडर हो जाता है।

भाग 2 (त्र्यम्बंक) ज्ञान+कर्म+भक्ति; (यजा महे) वन्दनीय हैं क्योंकि (सुगन्धिम्) ये परम आनन्द देने वाले हैं और (पति वेदनम्) प्रभु के इतना निकट पहुँचा देते हैं कि इनको अपना कर मनुष्य (उर्वारुकम् इव) खीरे के समान् (बन्धनात्) बन्धन मुक्त होकर (इतः) इस संसार के आवागमन से (मुक्षीय) मुक्त होते हुए (मा अमुतः) मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।।

मुः = बंधन, मोक्ष, चिता। पति= स्वामी प्रभु। वेदनम्= (विद्+ल्युट) ज्ञान, प्रत्यक्ष ज्ञान, भावना, संवेदन, पीड़ा, संताप।

एतत्ते रुद्रावसं तेन परो मूजवतोऽतीहि। अवततधन्वा पिनाकावसः कृत्तिवासाऽअहिꣳसन्नः शिवोऽतीहि ।।61।।

(एतत् ते) यह अर्जित ज्ञान तेरे (रुद्र) रूलाने जैसे कठिन समय में (अवसम्) तेरी रक्षा का साधन है (तेन) उस ज्ञान से (परः) आगे चलकर तू (मूजवतः= मुज मार्जन) पवित्रात्मा (अति इहि) हो जाएगा।

(अव) निश्चय से (तत) ही (धन्वा) प्रभु मय होकर तू (पिनाका अवसः) दूसरों का भी तारण हार हो जाएगा (कृत्तिवासाः) यशस्वी और

दानवीर तू (अहिंसन्) दूसरों का हित चितंक (नः) हमारे लिए (शिवः अति इहि) कल्याण कर्ता हो जाएगा।।

अव= निश्चय से। ओउम् तत सत = प्रभु ही सत्य हैं। पिनाकः= शिव का धनुष, त्रिशूल, लाठी या छड़ी। अवसः आवास, घर, गाँव।

त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोअस्तु त्र्यायुषम् ।।62।।

(त्रायुषं) तीन का हिस्सा है (जमदग्ने) ज्ञान योग (त्रायुषं) तीन का हिस्सा है (कश्यपः) कर्म योग (त्रायुषं) तीन का हिस्सा है (यत् देव एषु) यह जो भक्ति योग-प्रभु में अगाध विश्वास है (तत् नः अस्तु) उनको अपना कर हम (त्रायुषं) ज्ञान-कर्म और भक्ति से ओतप्रोत हो जाऐं।।

नोटः- यह मन्त्र भी यजु०अ०3 म०60 की आगे की स्थिति का ज्ञान कराता है। त्रय= तीन भागों मे विभक्त, जमदग्नि= ज्ञानयोगी, कश्यप= कर्मयोगी। देव एषु = प्रभु को पाने की इच्छा।

शिवो नामासि स्वधितिस्ते पिता नमस्तेऽअस्तु मा मा हिꣳसीः। निवर्त्तयाम्यायुषेऽन्नाद्याय प्रजननाय रायस्पोषाय सुप्रजास्त्वाय सुवीर्य्याय ।।63।।

(शिवो नाम असि) सबका कल्याण करने वाले प्रभु तुम निश्चय से शिव हो (स्वधितिः ते) अपना धारक आप स्वयं हो (पिता) परम पिता (नमः ते अस्तु) आपको नमन है (मा मा हिंसी) आप मुझे हिंसक अर्थात् किसी का भी मन, वचन और कर्म से बुरा करने वाला ना बनने दें।

(निवर्तयामि) निश्चय से आप मेरे प्रेरणा स्रोत हैं (आयुषे) अच्छे

जीवन के लिए (अन्नाद्याय) अपनी उदर पूर्ति के लिए (प्रजननाय) अपने विकास के लिए (रायस्पोषाय) धन प्राप्ति के लिए (सुप्राजास्त्वाय) उत्तम सन्तानों के लिए (सुवीर्याय) और मेरे मन की उत्तम सुख, शान्ति और आत्मिक बल के लिए।।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

(ऋषि- प्रजापति, आत्रेय, आंगिरस, वत्स, गोतम। देवता-अबोषध्यौ, आप, मेघ, परमात्मा, यज्ञ, अग्न्यब्बृहस्पत्य, ईश्वर, विद्वान् (कृष्णाजिन), अग्नि, मेखला, नीवि, कृष्णविषाय, दण्ड, वाग्विद्युत्, सविता, सोम, वरुण, सूर्य्यविद्वांसो, यजमान, सूर्य। छन्द-जगती, त्रिष्टुप्, पंक्ति, अनुष्टुप्, उष्णिक्, बृहती, शक्करी, गायत्री।)

एदमगन्म देवयजनं पृथिव्या यत्र देवासोऽअजुषन्त विश्वे। ऋकसामाभ्याꣳ सन्तरन्तो यजुर्भी रायस्पोषेण समिषा मदेम। इमाऽआपः शमु मे संतु देवीः। ओषधे त्रायस्व स्वधिते मैनꣳ हिंसीः ।।1।।

(इदं अगन्म) अपार होती हैं ये (देव यजनं) कल्याणकारी भावनाऐं (पृथिव्या) ममत्व से भरी (यत्र) जहाँ (देवासः) वेदों की शिक्षाओं से संस्कारित लोग (अजुषन्त= जुषी प्रीति सेवनयोः) परस्पर प्रीति पूर्वक अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हैं (विश्वे) इस संसार में।

(सन्तरन्तः) अपने सभी कार्यों को सफल बनाते हैं (युजुर्भी) यजुर्वेद की शिक्षाओं के अनुसार (रायस्पोषेण) जो धनार्जन करते हैं (सम इषा) और उससे अपना जीवन यापन करते हैं (मदेम) वे आनन्द को प्राप्त होते हैं।

(इमा आपः) ऐसा अमृत (शम उ मे सन्तु) मेरे लिए भी कल्याणकारी हो (देवीः ओषधे) ममता भरा अथर्ववेद (त्रायस्व) हमारी रक्षा करें (स्वधिते) वेदों की शिक्षाऐं (मा ऐनम् हिंसी) किसी का भी अनिष्ट नहीं होने दें।।

अगन्म= महान, जिनकी महत्ता न नापी जा सके। ओषधे= अथर्ववेद में आयुर्वेद का ज्ञान होने से उसे ओषध कहा है।

आपोऽ अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु। विश्वेॅंहि रिप्रं प्रवहन्ति देवीरुदिदाभ्यः शुचिरा पूतऽएमि। दीक्षातपसोस्तनूरसि तां त्वा शिवाॅं शग्मां परिदधे भद्रं वर्णं पुष्यन्।।2।।

(आपः) जीवन दायिनी–सुख देने वाली वाणी (अस्मान) हमारे लिए (मातरः) माँ के समान हित चाहने वाली है, (शुन्धयन्तु) शुद्ध कर देती हैं हमारे मन में बसी भावनाओं को (घृतेन) अपने तत्व ज्ञान से (नः) हमारे (घृतप्वः) मन के सारे मैलों को निकाल कर (पुनन्तु) फिर से पवित्र करके।

(विश्वं हि) निश्चय ही संसार में (रिप्रं) विकार–बुरी बातें (प्रवहन्ति) बहती रहती हैं जो हर जगह मनुष्यों को भटकाती हैं (देवीः) वेद की शिक्षाऐं (उदिदाभ्यः) अपने ज्ञान द्वारा (शुचिरः आपूतः) पूरी

तरह पवित्र (एमि) कर देती हैं। (दीक्षा तपसो) ज्ञान प्राप्ति से तपा हुआ (तनूः असि) तेरा शरीर हो (तां त्वा) ताकि इसे तू (शिवाम्) कल्याण मार्ग पर लगा सके (शग्मां) कष्टों को दूर कर (परिदधे) खुशियाँ देने वाला (भद्रं वर्ण पुष्यन्) भद्र इंसान बन जाए।।

महीनां पयोऽसि वर्चोदाऽअसि वर्चो मे देहि। वृत्रस्यासि कनीनकश्चक्षुर्दाऽअसि चक्षुर्मे देहि ।।3।।

प्रभु आप (महीनां) अनेकों धरतियों के निवासियों के (पयोअसि) जीवन दाता हो (वर्चोदा असि) आप सर्व शक्तिमान हों- (वर्चो में देहि) मुझे भी शक्ति सम्पन्न-आभायुक्त बना दो।

(वृत्रस्य असि) आप अन्धकार को दूर करने वाले हो (कनीन कः) अन्तर आत्मा के (चक्षुः दा असि) उजियारे हो, परम ज्ञानी हो (चक्षुः में देहि) मेरी आखें भी खोल दो- ज्ञान चक्षु दे दो।।

वर्च्= चमकना, उज्जवल या आभायुक्त होना। वर्चस्= वीर्य, बल, शक्ति। वृत्र= अधंकार, दुष्ट, बुराइयाँ, बादल, शत्रु। कनीन= आँख की पुतली। कः= ब्रह्मा, बिष्णु, कामदेव, अग्नि, वायु, यम, सूर्य, आत्मा, मन।

चित्पतिर्मा पुनातु वाक्पतिर्मा पुनातु देवो मा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः। तस्य ते पवित्रपते पवित्रपूतस्य यत्कामः पुने तच्छकेयम् ।।4।।

(चित् पतिः) आत्माओं के पति-परमात्मा ने (मा) खासतौर पर तुझे (पुनातु) पवित्र किया है (वाक्पतिः) ज्ञान के मालिक ने (मा)

चिन्हित किया है तुझे (पुनातु) पवित्र करके (देवो) देवतुल्य (मा) चुना है तुझे (सविता) सृष्टि के रचयिता ने (पुनातु) पवित्र करके (अछिद्रेण) कमियों-दोषों से मुक्त (पवित्रेण) पवित्रता द्वारा (सूर्यस्य रश्मिभिः) अपने ज्ञान भरे- आशीर्वाद से।

(तस्य ते) इसलिए तू (पवित्रपते) पवित्र पिता के (पवित्र पूतस्यं) पवित्र पुत्र का (यः कामः) जो कर्तव्य है (पुने) बार बार (तत् शकेयम्) उसे पूरा कर।।

चित्= विचार, प्रज्ञा, बुद्धि आत्मा, जीव। ब्रह्म, परमात्मा। मा= मापना, नापतोल करना, चिन्ह लगाना, सीमांकन करना। कामः= कामना, इच्छा, अभीष्ट स्नेह, अनुराग, प्रेम या विषय भोग की इच्छा, विषयों से तृप्ति की इच्छा, कामदेव। पुनातु= पवित्र करे। पुनर्= एक बार फिर से, नए सिरे से।

आ वो देवासऽईमहे वामं प्रयत्यध्वरे। आ वो देवासऽआशिषो यज्ञियासो हवामहे।।5।।

(आ) आह (वः) आपके (देवासः) देवत्व की हम (ईमहे) कामना करते हैं (वामं) आपने हमें जो दौलत वेद ज्ञान के रूप मे सोंपी है (प्रयति) वह हमें ले जाती है (अध्वरे) किसी का अहित न करने की ओर।

(आ) हाँ (वः) आपका (देवासः) देवत्व भरा (अशिषो) आशीर्वाद (यज्ञियासः) परोपकारी-कल्याएकारी कार्यो की ओर (हवामहे) हमें निस्वार्थ भावना के साथ ले जाता है।।

आ= स्वीकृति हाँ, दया, 'आह' पीड़ा या खेद। वामम्= धन

दौलत, जायदाद। नोट= वैदिक अहिंसा। हिंसा- शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, सामाजिक-लौकिक, पारलौकिक स्वार्थ पूर्ति के लिए की गई हिंसा-हिंसा है परन्तु दुष्टों का दलन वेदों में पूरी शक्ति से करना बताया है मर्यादा पुरूषोत्तम राजा रामचन्द्र ने महाज्ञानी ऋषिवर विष्वामित्र के आदेश पर स्त्री होने पर भी ताड़का का वध किया था इसी प्रकार योगीराज श्री कृष्ण ने अनेकों दुष्टों का वध किया और पूतना का स्त्री होने पर भी वध किया था। अतः आर्यो में नपुंसक-अहिंसा नहीं थी।

स्वाहा यज्ञं मनसः स्वाहोरोरन्तरिक्षात् स्वाहा द्यावापृथिवीभ्याꣳ स्वाहा वातादारभे स्वाहा ।।6।।

(स्वाहा) स्वार्थ का त्याग करते हुए (यज्ञं) परोपकारी-लोकहितकारी श्रेष्ठ कार्य जो किए जाते हैं (मनसः) मन से (स्वाहाः) वे निस्वार्थ किए कार्य (उरु) मन की भावनाओं को (अन्तरिक्षं) अन्तरिक्ष के समान विस्तृत कर देते हैं। (स्वाहा) निस्वार्थ रूप से किए कार्य (द्यावा) प्रसिद्धि दिलाते हैं (पृथिवीम्) और मन की शान्ति देते हैं (स्वाहा) निस्वार्थ रूप से किए कार्य (वातात्) जीवन दायी हैं- खुशबू फैला देते हैं, (आरभे) हे श्रेष्ठ मानव उनको शुरू कर दे (स्वाहा) सबके कल्याण हेतु।।

स्वाहा= स्व+हा= स्वार्थ का त्याग।

आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहा। दीक्षायै तपसेऽग्नये स्वाहा सरस्वत्यै पूष्णेऽग्नये स्वाहा। आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुवो द्यावापृथिवीऽउरोऽअन्तरिक्ष। बृहस्पतये हविषा विधेम स्वाहा ।।7।।

(आकूत्यै) दृढ़ निश्चय पूर्वक (प्रयुजे अग्नये) ज्ञान अग्नि को मुख्य उद्देश्य बनाने वाला (स्वाहा) वंदनीय है (मैधाये) विचारों को एकाग्र करके (मनसे अग्नये) पूरे मनन से ज्ञानार्जन करने वाला (स्वाहा) वन्दनीय है।

(दीक्षायै) पारंगत होता है जो (तपसे) इस कठिन तपस्या में (अग्नये) ज्ञानार्जन की (स्वाहा) समर्पित होता है (सरस्वत्यै) सरस् ज्ञानानन्द को (पूष्णे: अग्नये) पूरे योग से बढ़ाता है (स्वाहा) वह वन्दनीय है।

(आपो देवी:) यह जीवन दायिनी माँ विद्या (बृहती:) हमारी उन्नति का कारण है (विश्व शुभ्भुवो) संसार भर का कल्याण करने वाली है (द्यावा) आलोकित करती है (पृथिवी) दृढ़ता प्रदान करती है (उरो अन्तरिक्ष) मन के विचारों को अन्तरिक्ष के समान उन्नत कर देती हैं।

(वृहस्पतये= बृहतामाकाशदीना पति:) परम प्रभु भी उस (हविषा) ऐसे उत्तम इंसान को (विधेम) श्रेष्ठ (स्वाहा) वन्दनीय मानते हैं।।

प्रयुक्ति (प्रयुज्+क्तिम्)= इस्तैमाल, प्रयोग, उपयोग, उत्तेजना, प्रयोजन, मुख्य उद्देश्य ध्येय। हविस्= आहुति, मक्खन, जल। विधेम= पूज्य।

विश्वो देवस्य नेतुर्मर्त्तो वुरीत सख्यम्। विश्वोरायऽ इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ।।8।।

(विश्वो) संसार भर के (देवस्य) संस्कारित लोगों को (नेतु:

मर्त:) जीवों के प्राणाधार ने (वुरीत) चुना है (सख्यम्) मित्र-सखा।

(विश्वो) संसार भर के (राय:) धन-सम्पत्ति-वैभव की (इषुध्यति) चाहत रखने वाला (द्युम्न) प्रसिद्धि चाहने वाला (कृणति) चुनता है (पुष्यसे) उतनी धन-सम्पत्ति जिससे (स्वाहा) दूसरों का निस्वार्थ भाव से कल्याण करता रहे।।

ऋक्सामयो: शिल्पे स्थस्ते वामारभे ते मा पातमास्य यज्ञस्योदृच:। शर्मासि शर्म्म मे यच्छ नमस्तेऽअस्तु मा मा हिᳬसी: ।।9।।

(ऋक् सामयो:) ऋग और सामवेद की शिक्षानुसार कर्म करने वाले (शिल्पे) शिल्पी (स्थ: ते) तू डटा रह (वाम) सुख-दुख दोनो में (आरभे) पूरे प्रयत्न से दृढ़ता से (ते) ये शिक्षाऐं (मा पातम अस्य) तेरे लिए मार्ग दर्शक हैं (यज्ञस्य) पवित्र कार्यो के (उदृच:) सम्पूर्ण होने तक।

(शर्म असि) ये शिक्षाऐं आनन्ददायी हैं (शर्म मे यच्छ) मुझे परमानन्द तक ले जाने के लिए (नमस्ते) मैं इनका आदर करता हूँ (मा मा हिंसी) ये मुझे दुष्कर्मो से बचाती हैं।।

स्थ= समास के अन्त में प्रयुक्त-खड़ा होने वाला, ठहरने वाला, डटा रहने वाला। उदृच:= अन्त तक।

ऊर्गस्यांगिरस्यूर्णम्रदाऽउर्जं मयि धेहि। सोमस्य नीविरसि विष्णो: शर्मासि शर्म यजमानस्येन्द्रस्य योनिरसि सुसस्या: कृषीस्कृधि। उच्छ्रयस्व वनस्पतऽऊर्ध्वो मा पाह्य ᳬहसऽआस्य यज्ञस्योदृच: ।।10।।

(ऊर्क् असि) मेरे जीवन में बल एवं प्राण का संचार करने वाली हैं, (आङ्गिरसी) अथर्ववेद की शिक्षाऐं (ऊर्णम्रदा) बरबाद होने से बचाने वाली हैं (ऊर्ज मयि धेहि) मुझ मे शक्ति प्रदान करके।

(सोमस्य) सुख और शान्ति की (नीविः) ग्रन्थि (असि) हैं (विष्णोः शर्म असि) सर्वव्यापी परम पिता के आनन्द को प्राप्त कराने वाली हैं (इन्द्रस्य योनिः असि) सुख-समृद्धि का द्वार हैं (सुसस्याः कृषीः कृधिः) अच्छे अन्नों वाली खेती की मार्ग दर्शक हैं।

(उच्छ्र्यस्व) मनुष्य को स्वस्थ एवं दीर्घ जीवी बनाने का विज्ञान है, (वनस्पते ऊर्ध्वः) जड़ी-बूटियों के गुण-दोषों को उजागर करती हैं (मा पाहि अंहसः) रोगो-कष्टों का निवारण करके जल्द ही स्वस्थ बनाती हैं (अस्य यज्ञस्य उदृचः) हमारे जीवन यज्ञ के अन्तिम समय तक साथ निभाती हैं।।

नोटः- अथर्ववेद को आङ्गिरस वेद के नाम से भी पुकारा जाता है। अथर्ववेद के अन्य नाम है-ब्रह्मवेद, छान्दोवेद, अथर्वा आङ्गिरसो मुखम्। इसके अनेक सूक्तों मे ब्रह्म (परमेश्वर) का हृदयग्राही वर्णन है। वैसे इसमें आयुर्विज्ञान, कृषि विज्ञान और शिल्प कलाओं के बारे में बहुत विस्तार से बताया है। योनिः= द्वार। सुसस्या= उत्तम अन्न। अम्= जल्दी, शीघ्र। हस्= मुस्कराना, हंसी उड़ाना, मखौल करना, उपहास करना, खिलाना, चमकना।

व्रतं कृणुत व्रतं कृणुताग्निर्ब्रह्माग्निर्यज्ञो वनस्पतिर्यज्ञियः। दैवीं धियं मनामहे सुमृडीकामभिष्टये वर्चोधां यज्ञवाहसꣳ सुतीर्था नोऽअसद्वशे। ये देवा मनोजाता मनोयुजो

दक्षक्रतवस्ते नोऽवन्तु ते नः पान्तु तेभ्यः स्वाहा ।।11।।

(व्रतं कृणुत) स्थिर मन करो (व्रतं कृणुत) दृढ़ता से (ब्रह्म अग्निः यज्ञः) अथर्ववेद की आयुर्विज्ञान और कृषि विज्ञान सम्बन्धी शिक्षाऐं जो संसार भर के कल्याण हेतु हैं (वनस्पतिः यज्ञियः) उनको परोपकार में लगा दो।

(दैवीं) ममता से युक्त (धियं) बुद्धि और मन की (मनामहे) भावनाऐं रखो (सुमृडीकाम्) यह उत्तम सुखों के (अभिष्टये) मन चाहे परिणाम देती हैं (वर्चोधाम्) अपार शक्ति देती है (यज्ञवाहसम) कल्याण कार्यो को आगे बढ़ाने वाली हैं (सुतीर्था) पुण्य दायिनी हैं (नः) हमें (असत्) दुखों और बुराईयों से (वशे) दूर रखती हैं-वश में रखती हैं।

(ये) जो (देवाः) दिव्य पुरुष-ऋषिवर-विज्ञानी हैं (मनोजाता) अपने ज्ञान से (मनोयुजः) औरों को भी ज्ञान-विज्ञान से लाभान्वित करते हैं (दक्षक्रतवः) ज्ञान प्राप्त किए दक्ष लोग (ते) वे (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करते हैं (ते) वे (नः) हमें (पान्तु) रोगों से बचाते हैं (तेभ्यः स्वाहा) ऐसे देव पुरूषों का हम सम्मान करते हैं।।

श्वात्राः पीता भवत यूयमापोऽअस्माकमन्तरुदरे सुशेवाः। ताऽअस्मभ्यमयक्ष्माऽ अनमीवाऽअनागसः स्वदन्तु देवीरमृताऽऋतावृधः ।।12।।

(श्वात्राः) संस्कृति के आदि स्रोत-वेदों की शिक्षाऐं (पीत्वा) ग्रहण करने वाले (भवत) बनो (यूयं) तुम सब, (आपः अस्मांक) क्योंकि ये हमारे (अन्तः उदरे) बुद्धि, मन और आत्मा में समा कर (सुशेवाः) लाभकारी होती हैं।

(ताः) वे (अस्मभ्यम्) हमें (अयक्ष्माः) गम्भीर रोगों, दुःखों और पाप कर्मों से बचाती हैं (अनमीवाः) निष्पाप होने से (अनागसः) मन और आत्मा को शान्ति मिलती है (स्वदन्तु) इसलिए हमारे लिए हितकारी हैं (देवीः) दिव्य गुणों से भरपूर हैं (अमृताः) अमृत समान हैं (ऋता वृधः) सच्चा इंसान बनाती हैं।।

भवत्= होने वाला, घटने वाला, वर्तमान। ऋत = उचित, सही, ईमानदार, पूजित, सच्चा।

इयं ते यज्ञिया तनूरपो मुंचामि न प्रज्ञाम्। अꣳ होमुचः स्वाहाकृताः पृथिवीमाविशत पृथिव्या संभव ।।13।।

(इयं) यह (ते) तेरे लिए (यज्ञिया) कल्याणकारी हैं (तनूः = तन्+उ) फैले हुए (अपः) मलों को दूर करके (मुञ्चामि) शुद्ध करती हैं (नः) हमारी (प्रज्ञाम्) बुद्धि को।

(अंहोमुचः) शुद्ध हुई बुद्धि (स्वाहा कृताः) परोपकारी हो कर (पृथिवीम्) शरीर में (आविशत) स्थिर रहती है (पृथिव्या) और शरीर को (सम्भव) सही मार्ग पर ले जाती है।।

मुच्= मुक्त करना, ढीला होने देना, स्वतन्त्र करना।

अग्ने त्वꣳ सु जागृहि वयꣳ सु मंदिषीमहि। रक्षाणोऽ अप्रयुच्छन् प्रबुधे नःपुनस्कृधि ।।14।।

(अग्ने) परम प्रभु (त्वं) आप (सु जागृहि) परम ज्ञानी हो (वयं) और हम (सु) बेहद (मन्दिषी महि) खल-अज्ञानी-मूर्ख हैं।

(रक्षा नः) हमारी रक्षा करें (अप्रयुच्छन) सभी प्रमादों से

(प्रबुधे) ज्ञान द्वारा बुद्धिमान बनाकर (नः) हमें (पुनः) फिर से (कृधि) सही मार्ग दिखलाऐं।।

मन्दिमन्= धीमा पन, जड़ता, मूर्खता। सु= अच्छा, भला, श्रेष्ठ, निर्माण करना, पैदा करना, सम्पन्न करना, प्रकाशित करना।

पुनर्मनः पुनरायुर्मऽआगन् पुनः प्राणः पुनरात्मा मऽआगन् पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं मऽआगन्। वैश्वानरोऽ अदब्धस्तनूपा ऽअग्निर्नः पातु दुरितादवाद्यात् ।।15।।

(पुनः मनः) फिर से मेरा मन निर्मल हो जाए (पुनः आयुः मे आगन्) फिर से मेरा जीवन धन्य हो जाए (पुनः प्राणः) फिर से प्राण शक्ति से भर जाऊँ (पुनः आत्मा मे आगन्) फिर से मेरी आत्मा पवित्र हो जाए (पुनः चक्षुः) फिर से दृष्टि सबका कल्याण देखे (पुनः श्रोत्रम् मे आगन्) फिर से मेरे कानों मे शुभ वाणी गूँजने लगे।

(वैश्वानरः) परमपिता परमात्मा (अदब्धः) पवित्र कर दें (तनूपा) मेरे सम्पूर्ण वजूद को (अग्निः नः) हमारे सारे कर्म (पातु) हो जाऐं (दुरियात् अवद्यात्) बुरे पाप भरे रास्तों से परे।।

त्वमग्ने व्रतपाऽअसि देवऽआ मर्त्येष्वा। त्वं यज्ञेष्वीड्यः। रास्वेयत्सोमा भूयो भर देवोनः सविता वसोर्दाता वस्वदात् ।।16।।

(त्वं अग्ने) परम प्रभु आप (व्रत पा असि) हमारे लिए कल्याण भरे कार्यो को पूरा करने वाले हो (देवः आ) हाँ ऐसे दाता हो (मर्त्येष्वा) मरणशील प्राणियों के लिए।

(त्वं) आप (यज्ञेषु ईडयः) उत्तम कर्मों के प्रेरणा स्रोत हो।

(रायः इयत्) आप हमें इस तरह का धन वान बनाऐं कि (सोमा भूयः आभर) सारे संसार में सुख एवं शान्ति बाँट सकें। (देवो नः सविता) प्रभु आपने हमे पैंदा किया है (वसुः दाता) श्रेष्ठ मानव बनाकर (वसुः अदात्) वसु होकर भी हम लाचार ना रहें।।

एषा ते शुक्र तनूरेतद्वर्चस्तया सम्भव भ्राजंगच्छ। जूरसि धृता मनसा जुष्टा विष्णवे ।।17।।

(एषा ते) यह तेरा (शुक्र)ज्ञान से भरा पवित्र मन और (तनूः) तन (एतत् वर्चः) तथा दैदीप्यमान तेज इसलिए है (तया) ताकि उससे तू (सम्भव) अपनी अगली पीढ़ियों को (भ्राजंगच्छ) उत्तम शिक्षा से ज्ञानवान बनाऐ।

(जूःअसि) तू स्फूर्ति, से भरा है (धृता मनसा) तेरा मन तेरे वश में है (जुष्टा विष्णवे) अपनी सारी शक्ति को संसार भर के लिए ऐसे कार्यों में लगा जो कष्ट निवारक हों-सुख देने वाले हों-रचानात्मक हों।।

नोटः- यहाँ विष्णु शब्द को कितनी उत्तमता से इस्तैमाल किया है। वैष्णजन तो तेने कहिए जे पीर पराई जाने रे। शुक्र= दीप्त ज्ञान वाले। एतद्= (ई+अदि+तुक्) यह, यहाँ, सामने।

तस्यास्ते सत्यसवसः प्रसवे तन्वो यत्रंमशीय स्वाहा। शुक्रमसि चन्द्रमस्यमृतमसि वैश्वदेवमसि ।।18।।

(तस्याः ते) इस प्रकार किए हुए तेरे कार्य (सत्य सवसः) परमशुद्ध प्रेरणा योग्य हैं (प्रसवे तन्वः) लोगों के अन्दर पैदा करते हैं

(यन्त्रम अशीय) एक नियन्त्रित अनुशासन (स्वाहा) सर्वहितकारी भावना के साथ।

(शुक्र मसि) तू शुद्ध मन, तन और, ज्ञान से भरा है (चन्द्रमसि) संसार को शान्ति और रोशनी देने वाला है (अमृत मसि) लोगों को कष्टों से बचाते हुए उन्हें परम सुख देने वाला है (वैश्व देवम् असि) तू संसार का श्रेष्ठ प्राणी है।।

चिदसि मनासि धीरसि दक्षिणासि क्षत्रियासि यज्ञियास्यदिति रस्युभयतः शीर्ष्णी । सा नः सुप्राची सुप्रतीच्येधि मित्रस्त्वा पदि बध्नीतां पूषाऽध्वनस्पात्विन्द्रायाध्यक्षाय ।।19।।

(चित् असि) हमारी चेतना शक्ति मन और आत्मा को जागृत करती है (मना असि-मनु अवबोधे) आत्मिक ज्ञान देती है (धीः असि) बुद्धि को संवारती है (दक्षिणा असि) सत्कर्मों में दक्ष करने वाली है (क्षत्रिय असि) नष्ट होने से बचाने वाली है, वीरता और साहस देने वाली है (यज्ञिया असि) पवित्रात्मा परोपकारी बनाने वाली है (अदितिः असि) उदार बनाती है (उभयतः शीर्ष्णी) इस लोक और परमलोक दोनों में ही शीर्ष पर पहुँचाने वाली है-उत्तमशिक्षा- वेद वाणी।

(सा) वह (नः) हमें (सुप्राची) रोशनी की ओर ले जाती है (सुप्रतीची एधि) अन्धकार से बचाती है (मित्रः त्वा) मनुष्यों का परम हित करने वाली है (पदि-पदगतौ) कर्तव्यों में (बध्नीताम्) बाँधने वाली है (पूषा) पोषण करने वाली है (अध्वनः पातु) सोचने के दृष्टिकोण को सही करती है (इन्द्राय अध्यक्षाय) परम पद पर पहुँचाने वाली है।।

क्षत्रिय= पुरुषार्थी

अनु त्वा माता मन्यतामनु पितानु भ्राता सगर्भ्योऽनु सखा सयूथ्यः। सा देवि देवमच्छेहीन्द्राय सोमꣳ रुद्रस्त्वावर्त्तयतु स्वस्ति सोमसखा पुनरेहि।।20।।

(अनु त्वा)आपको ही (माता मन्यताम) माँ के सदृश मानता हूँ (अनु पिता) आपको ही पिता समान, (अनुभ्राता) आपको ही भाई के समान (सगर्भ्यो) जिसने एक ही गर्भ से जन्म लिया-सहोदर (अनुसखा) आपको ही सन्मार्ग पर ले जाने वाला ऐसा परम् मित्र समझता हूँ (सयूथ्य:) जो उन्नति के पथ पर ले जाने वाला है।

हे प्रभु (सा देवि) आप ममता भरे हो (देव) सद्गणों (अच्छ इहि) की ओर प्रेरित करने वाले हो (इन्द्राय) ऐश्वर्य के लिए (सोमम्) सुख एवं शान्ति के लिए (रुद्र) दुश्मनों का दलन करने के लिए (त्वा वर्तयतु) मैं आपकी ही शरण में हूँ (स्वस्ति) कल्याण हेतु (सोम सखा) परम सुख और आत्मिक शान्ति के दाता (पुन: एहि) एकबार फिर से इस जीवन को सफल बना दो।।

अनुत्तम= सर्वश्रेष्ठ, जिससे अच्छा कोई न हो। सखा=स= मिलाकर, साथ साथ सदृश, समान प्रवृत्ति का। ख:= आनन्द, स्वर्ग, प्रसन्नता, ज्ञान, ब्रह्मा, सूर्य, आकाश। यूथ्यम्= टोली, पार्टी, झुण्ड।

वस्व्यस्यदिति रस्यादित्यासि रुद्रासि चन्द्रासि। बृहस्पतिष्ट्वा सुम्ने रम्णातु रुद्रो वसुभिराचके।।21।।

वेदों की शिक्षाऐं (वस्वी असि) हमारे जीवन को उन्नत करने वाली, (अदिति असि) हमे दुर्गुणों और विनाश से बचाने वाली हैं

(आदित्या असि) हमारे जीवन को ज्ञान की रोशनी से भर देने वाली हैं (रुद्र असि) हमे रुला देने वाले दुश्मनों- (अ) आन्तरिक काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, अहंकार (ब) वाह्य खतरों से बचाने वाली हैं (चन्द्रअसि) सुख और शान्ति देने वाली है। (वृहस्पतिः त्वा) वेद वाणी तुम ज्ञान की भण्डार हो (सुम्ने) तुम्हारा ही स्मरण करता हूँ, (रम्णातु) रमण करता हूँ-ज्ञान की गंगा में गोते लगाता हूँ, (रुद्रों) कठिन समय में रक्षा करने वाली हो (वसुभिः) श्रेष्ठ जनों की (आचके) हमें इसका भरोसा है।।

आदित्यास्त्वा मूर्द्धनाजिघर्मि देवयजने पृथिव्याऽइडायास्पदमसि घृतवत् स्वाहा। अस्मे रमस्वास्मे ते बंधुस्त्वे रायो मे रायो मा वयꣳ रायस्पोषेण वियौष्म तोतो रायः ।।22।।

हे वेद वाणी, (आदित्याः त्वा) श्रेष्ठ जन जो औरों के जीवन को भी ज्ञान की रोशनी से आलोकित कर देते हैं उनकी भी तुम माँ के समान हो- जिसने उन्हे संस्कारित किया है (मूर्धन्) शिखर पर पहुँचाया है (आजिघर्मि) जीवन को आलोकित किया है (देवयजने) श्रेष्ठ जनों के कल्याण भरे कार्यों की (पृथिव्याः) इस धरा पर (इडायाः) वेद वाणी (पदम असि) तुम आधार हो (घृतवत्) बुराइयों को हटा कर श्रेष्ठ बनाने के लिए, (स्वाहा) कल्याण भरे कार्यों के लिए।

(अस्मे) हम में (रमस्व) रम जाओ (अस्मे) हमारी (ते बन्धुः) तुम परम् हितचिंतक हो (त्वे रायो) तुम्हारा यह अनमोल धन (मे रायो) मेरा धन बन जाए (मा वयं) हम कभी ना हों (रायःपोषेण) इस धन की

वृद्धि से (वियौष्म) वंचित (तो तो रायः) और हमारा यह धन किसी के अनिष्ट का कारण ना बने।।

अदितिः= देवो की माँ, आदित्यों की माँ, वेदवाणी, पृथ्वी, गाय। आदित्य= लोगों के जीवन को रोशनी से भर देने वाला, सूर्य, प्रभु।

समख्ये देव्या धिया सं दक्षिणयोरुचक्षसा। मा मऽआयुः प्रमोषीर्मोऽअहं तव वीर विदेय तव देवि संदृशि ।।23।।

(सम्अख्ये) वेद का पठन, पाठन, मनन और अनुशीलन (देव्याधियासम्) बुद्धि-मन-आत्मा को देवतुल्य परम श्रेष्ठ बनाता है। (दक्षिणया) दक्ष-पारंगत करता है (उरुचक्षसा) हमारी सोच को- हमारे देखने के तरीके को विस्तार देता है, संकुचित नहीं रहने देता। (मा मे आयुः) मेरे जीवन को मत (प्रमोषी) व्यर्थ जाने देना (माउ अहम्) और ना ही हम (तववीरं) इन तेरे ज्ञान प्राप्त किए बहादुर सपूतों को (विदेय) विरोधियों के आगे झुकने देना (तव देवि) हे ज्ञान के देने वाली वेद वाणी तभी आपका (सन्दृशि) सर्वोच्च स्थान होगा।।

एष ते गायत्रो भागऽइति ते सोमाय ब्रूतादेष ते त्रैष्टुभो भागऽइति मे सोमाय ब्रूतादेष ते जागतो भागऽइति मे सोमाय ब्रूताच्छन्दोनामानाꣳ साम्राज्यंगच्छेति मे सोमाय ब्रूतादास्माकोऽसि शुक्रस्ते ग्रह्यो विचितस्त्वा विचिंवन्तु ।।24।।

(एषः ते) यह तेरा (गायत्रो) गायत्री-ज्ञान योग का (भाग) हिस्सा (इति) ऐसा कहा जाता है (मे सोमाय) मेरे सुख-शान्ति के लिए (ब्रूयात्) बताया है (ते त्रैष्टुभो) त्रैष्टुभ- कर्म योग (भागऽइति मे सोमाय

ब्रूयात्) का हिस्सा ऐसा कहते हैं मेरे सुख-शान्ति के लिए बताया है (ते जागतो) तेरा जागती- भक्तियोग का (भागऽइति मे सोमाय ब्रूयात्) हिस्सा ऐसा कहते हैं मेरे सुख शान्ति के लिए बताया है (छन्दो नामानाम् साम्राज्यम्) अन्य छन्दों में जो ऋचाऐं (गच्छइति) कही गई हैं (मे सोमाय ब्रूयात) वे भी मेरे सुख शान्ति के लिए बताई गई हैं (अस्माक: असि) हमारे लिए (शुक्र: ते) वे मन-वचन- कर्म को पवित्र करने वाली हैं (ग्रह्यो) और ग्रहण करने के योग्य हैं (विचित:) विशेष रूप से (विचिंवन्तु) इनका पठन, पाठन और मनन मुझे करना है।।

अभित्यं देवꣳ सवितारमोण्योः कविक्रतुमर्चामि सत्यसवꣳ रत्नधामभि प्रियं मतिं कविम्। ऊर्ध्वा यस्यामतिर्भाऽअदिद्यु तत्सवीमनि हिरण्यपाणिरमिमीत सुक्रतुः कृपा स्वः। प्रजास्त्वाऽनुप्राणन्तु प्रजास्त्वमनुप्राणिहि।।25।।

हमारा (अभित्यं) समर्पण है उनको (देवम् सवितारम्) जो हरेक चीज को बनाने वाले हैं (ओण्यो:) इस धरती और आकाशीय पिण्डों के (कविक्रतुम) और परम ज्ञानी हैं (अर्चामि) उनका ही पूजन करता हूँ (सत्य सवम्) जो सदा ही सत्य हैं (रत्न धाम्) रत्नों-गुणों के धाम हैं (अभिप्रिंय) सर्वप्रिय हैं (मतिम्) सर्वज्ञ हैं (कविम्) सारी विद्याओं के आधार और देने वाले हैं।

(ऊर्ध्वा) सर्वोकृष्ट (यस्य) जिनकी (अमति:) अतुल्य-अगाध (भा) दीप्ति (अदिद्युतत्) प्रकाशित हो रही है (सवी मनि) इस सम्पूर्ण सृष्टि का (हिरण्यपाणि:) परम शाक्तिशाली हाथों से (अमिमीत) निमार्ण करते हैं (सुक्रतु:) बहुत खूबसूरती से (कृपा स्व:) और अपनी परम कृपा

से। (प्रजा:) सारे प्राणी (अभित्वा) आप से (अनुप्राणन्तु) अपने जीवन की याचना करते हैं (प्रजा:) सब प्राणियों को (त्वा अनुप्राणिहि) आप प्राण शक्ति से सञ्चारित कर दो प्रभु।।

शुक्रं त्वा शुक्रेण क्रीणामि चन्द्रं चन्द्रेणामृतममृतेन। सग्मे ते गोरस्मे ते चन्द्राणि तपसस्तनूरसि प्रजापतेर्वर्ण: परमेण पशुना क्रीयसे सहस्रपोषं पुषेयम् ।।26।।

(शुक्रम् त्वा) प्रभु आप सारी कायनात– जो कुछ इस सृष्टि में है– के सार हो (शुक्रेण क्रीडामि) मै उसी सार में खेलता रहूँ – उसी में लीन हो जाऊँ (चन्द्रम्) सुख हो–शान्ति हो, (चन्द्रेण अमृतम्) जहाँ आप इस सुख के शीर्ष पर हों (अमृतेन सग्मे) आपके इस अमृत का मैं याचक हूँ– इसे पाना चाहता हूँ (ते गो) आपकी जो अमृत वाणियाँ–वेद वाणियाँ है (अस्मे ते चन्द्राणि) मुझ में वे आपका परम आनन्द भर दें (तपस: तनू असि) प्रभु आप तो परम् शुद्ध हो (प्रजापते: वर्ण:) सारे कायनात के मालिक (परमेण पशुना) इस शुद्ध हुए – इंसानियत पाए पशु को (क्रीयसे) आप मे खो जाने दो (सहस्र पोषम्) हजार तरह की खुशियों से (पुषेयम्) समृद्ध कर दो।।

शुक्रं = किसी भी वस्तु का सत्, वीर्य। क्री = खरीदना, मोल लेना।

क्रीडा = जी बहलाना, खेलना, आमोद, हंसी–मजाक करना। पोष: = पोषण, पुष्टि, संवर्धन, समृद्धि, प्राचुर्य।

मित्रो नऽएहि सुमित्रधाऽइन्द्रस्योरुमाविश

दक्षिणमुशन्नुशंतथ्ठ स्योनः स्योनम्। स्वान भ्राजांघारे बम्भारे हस्त सुहस्त कृशानवेते वः सोमक्रयणास्तात्रक्षध्वं मा वो दभन्।।27।।

(मित्रः) सारे दुर्गुणों से बचा कर श्रेष्ठ मार्ग पर ले जाने वाले सखा (नः) हमें (एहि) सद्बुद्धि हो (सुमित्रध) परम स्नेह करने वाले धारक प्रभु (इन्द्रस्य उरुम आविश) हमारे हृदयाकाश को ऐसे धन से माला माल कर दो, (दक्षिणम्) जो उत्साह से परिपूर्ण हो (उशन्) सबकी भलाई में (उशन्तम्) भला चाहने वाला हो (स्योनः स्योनम्) सुखों में सुखी होने वाला हो।

(स्वान् - सु + आन) उत्तम प्राण शक्ति से भरा (भ्राज) ज्ञान से ओतप्रोत (अङ्घारे) दुर्गुणों से परे (बम्भारे) ज्ञान के बाधक दोषों से दूर (हस्त सुहस्त) कार्य कुशल (कृशानो वः एते) आपके जैसा पाप से और कमजोरियों से परे (वः) आपके (सोमक्रयणाः) आनन्द को पाने वाला (तान्) ऐसे धन को (रक्षध्वम्) हम बचाते रहें, रक्षित करें (मा) और ना हो (वः) वह (दमन) विध्वंसक, किसी का भी अनिष्ट करने वाला।।

परि माग्ने दुश्चरितादबाधस्वा सुचरिते भज। उदायुषा स्वायुषोदस्थाममृतांऽअनु।।28।।

(परि) दूर रक्खें (मा) मुझे (अग्ने) परम प्रभु (दुश्चरितात्) दुश्चरित्र से- बुरे कर्मो से (बाघस्व) पूरी तरह रोक कर (आ मा सुचरिते भज) और मुझे उत्तम चरित्र वाला बनाए रखें।

(उत् आयुषा) मेरा जीवन (स्व आयुषा) सुख मय जीवन

हो-कल्याणकारी हो (उत् अस्थानम्) ऐसा दिव्य उच्च आदर्शों वाला (अमृतान् अनु) कि मै अमर हो जाऊँ अर्थात् मेरा नाम हमेशा याद रक्खा जाए।।

प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम्। येन विश्वाः परि द्विषो वृणक्ति विन्दते वसु ।।29।।

(प्रति) ठीक उसी (पन्थाम्) रास्ते पर (अपद्महि) बिना लाभ-हानि, स्तुति-निन्दा, जीवन-मरण की परवाह किए हुए चलूँ जो (स्वस्तिगाम्) कल्याण की ओर जाता हो (अनेहसम्) और पाप से परे हो।

(येन) जिसमें (विश्वाः) संसार भर की (परि) दूर हों (द्विषः) द्वेष की भावनाऐं (वृणक्ति) पूरी तरह से दूर (विन्दते) और पसन्द किया जाऊँ - याद किया जाऊँ (वसु) श्रेष्ठ इन्सानों में।

आदित्यास्त्वगस्यदित्यै सदऽआसीद। अस्तभ्नाद् द्यां वृषभोऽअंतरिक्षममिमीत वरिमाणम्पृथिव्याः। आसीदद्विश्वा भुवनानि सम्राड् विश्वेत्तानि वरुणस्य व्रतानि ।।30।।

हे मानव (आदित्या) दुष्ट प्रवृत्ति का नही - सद्गुणों- देवत्व गुणों वाला (त्वक् असि) तू है (अदित्यै) हे सद्गुण सम्पन्न (सद्ः आसीद्) इसी तरह बने रहना ऐसे आसन पर ही बैठे रहना। (अस्तभ्नात्) पकड़ा हुआ है- थामा है (द्याम्) तूने वह पवित्र आलोकित स्थान (वृषभः) हे नर पुङ्गव (अन्तरिक्षम्) और भी ऊँचाइयों को (अमिमीत) हासिल कर (वरिमाणम्) विशाल बन (पृथिव्याः) दृढ़ता के

साथ–विश्वास के साथ

(आसीदत्) हो जा (विश्वा भुवनानि) सारे संसार और लोक लोकान्तरों का (सम्राट) एक छत्र सम्राट (विश्व इत् तानि) बस, ये सभी सचमुच (वरुणस्य व्रतानि) श्रेष्ठ बनने के तरीके हैं परन्तु कठिन हैं।।

नोटः- सम्राट का यहाँ भाव है- कि सारा संसार तेरे सद्‌गुणों के आगे झुक जाए और तेरे बताए मार्ग पर चल पड़े।

वनेषु व्यन्तरिक्षं ततान् वाजमर्वत्सु पयऽउस्रियासु। हृत्सु क्रतुं वरुणो विक्ष्वग्निं दिवि सूर्य्यमदधात् सोममद्रौ ।।31।।

(वनेषु) वन में (अन्तरिक्षम्) और अन्तरिक्ष मे (विततान) विस्तार है, (वाजम्) शक्ति है (अर्वत्सु) घोड़ों में, (पयः) दूध है (उस्रियासु) दुधारी गायों में।

(हृत्सु) हृदय में (क्रतुम) कर्म संकल्प होता है (वरुणो) श्रेष्ठ जनों के (विक्षु) संसार में, (अग्निम्) ऊर्जा में (दिवि) चमक और तेज है, (सूर्यम्)सूर्य में (अद्‌धात) परन्तु परम प्रभु के सान्निध्य में मिलती है (सोमं) परम सुख और शान्ति (अद्रौ) सारे संसार भर के लिए।।

सूर्य्यस्य चक्षुरारोहाग्नेरक्ष्णः कनीनकम्। यत्रैतशेभिरीयसे भ्राजमानो विपश्चिता ।।32।।

(सूर्यस्य) दिन में सूर्य की रोशनी से (चक्षुः) आखें (आरोह) सारे दृश्य देख लेती हैं , और (अग्नेः) रात में अग्नि- ऊर्जा की रोशनी से दिखाई देने वाली चीजों को (अक्ष्णः) आँखों की (कनीनकम्) पुतलियाँ देख लेती हैं।

(यत्र) जहाँ (एतशेभिः) इन्द्रियाँ भी असमर्थ हैं (इयसे) देख पाने में, (भ्राजमानो) उन प्रभु का निवास तो (विपश्चिता – वि+पश् + चित) केवल मन के द्वारा किए गए चिन्तन में है।।

उस्रावेतं धूर्षाहौ युज्येथामनश्रूऽअवीरहणौ ब्रह्मचोदनौ। स्वस्ति यजमानस्य गृहान् गच्छतम् ।।33।।

(उस्रावेतं) रास्ता एकदम साफ है (धूर्षाहौ) गृहस्थों के लिए (युज्येथाम्) चलते रहो इस पर (अनश्रू) घबराना नहीं (अवीरहणौ) इन बतलाए सच्चे रास्तों पर जो परोपकार की भावना से भरे हों और जो (ब्रह्मचोदनौ) वेद की शिक्षाओं के अनुरुप हों।

(स्वस्ति) कल्याण होगा (यजमानस्य) ऐसे कर्मवीरों के (गृहान) घरों में (गच्छतम्) अपने आप जाकर।।

उस्रावेतं = रोशनी की किरण है।

भद्रो मेऽसि प्रच्यवस्व भुवस्पते विश्वान्यभि धामानि। मा त्वा परिपरिणो विदन् मा त्वा परिपन्थिनो विदन् मा त्वा वृकाऽ अघायवो विदन्। श्येनो भूत्वा परापत यजमानस्य गृहान् गच्छ तन्नो संस्कृतम् ।।34।।

परम पिता (भद्रो मे असि) मेरा कल्याण हो (प्रच्यवस्व) प्राप्त हो (भुवः पते) परम प्रभु (विश्वानि) सारे संसार की (अभि) सम्पूर्ण (धामानि) ज्ञान शक्ति और पवित्र भावनाऐं।

हे मानव (मा त्वा) ना मिलें तुझे (परिपरिणः) धोखा देने–लूटने वाले लोग, इधर रास्ते से भटकाने वाले–गुमराह करने वाले, (विदन् मा

त्रुटि सुधार देखें

त्वा) ना मिलें तुझे (वृका:) केवल लेने की भावना वाले जिन्होने देना सीखा ही ना हो, (अघायव:) जो दूसरे का हमेशा बुरा चाहने वाले (विदन्) हों।

(श्येनो) शीघ्र से शीघ्र (भूत्वा) हो जाओ (परापत) उनसे दूर और (यजमानस्य) कल्याण करने वाले, शुद्ध पवित्र भक्त के (गृहान गच्छ) घर अर्थात् शरण में जाओ (तत्) तभी (नौ) यह सारा संसार (संस्कृतम) संस्कारित होगा अर्थात् सुन्दर बन जाएगा।

नमो मित्रस्य वरुणस्य चक्षसे महो देवाय तदृतꣳ सपर्यत। दूरेदृशे देवजाताय केतवे दिवस्पुत्राय सूर्य्याय शꣳसत ।।35।।

(नमो) नमन हो (मित्रस्य) जीवनाधार ज्योतिर्पुञ्ज प्रभु के लिए (वरुणस्य) परम श्रेष्ठ (चक्षसे) प्रकाशक (महोदेवाय) महाप्रभु के लिए (तत्) जो (ऋतं) सही अर्थो मे (सपर्यत) पूजनीय हैं।

(दूरे दृशे) दूर से भी दूर देखने वाले अर्थात जिनसे कुछ भी छुपा नहीं है (देवजाताय) श्रेष्ठ जनों के मित्र (केतवे) आनन्द देने वाले (दिव: पुत्राय) अपने पुत्रों के लिये ज्ञान की रोशनी देने वाले और उनके जीवन में उजाला करने वाले (सूर्याय) प्रभु (शंसत) हमारे मार्ग दर्शक हैं सही राह दिखाने वाले हैं।।

वरुणस्योत्तम्भनमसि वरुणस्य स्कम्भसर्जनी स्थो वरूणास्यऽऋतसदन्यसि वरुणास्यऽऋतसदमसि वरुणस्यऽऋतसदनमासीद ।।36।।

हे श्रेष्ठ मानव तुम (वरुणस्य) परम श्रेष्ठ प्रभु की (उत्तम्भनम् असि) सबसे श्रेष्ठ रचना हो (वरुणस्य) प्रभु के (स्कम्भ सर्जनी स्थ) सबसे मजबूत आधारस्तम्भ हो (वरुणस्य) प्रभु के (ऋत सदनी असि) यम और नियमों का पालन करने वाले हो (वरुणस्य) प्रभु के (ऋत सदनम् असि) आदर्शों को अपने जीवन में अपना लिया है (वरुणस्य) प्रभु के (ऋत सदनम् आसीद) सबसे योग्य निवास बने रहना।।

ऋत = सही अर्थ मे। स्कम्भ = आधार स्तम्भ। सर्जनी = साल का पेड़- जो मजबूत और एकदम सीधा होता है। यहाँ निवास का तात्पर्य है प्रभु को पूरी तरह मन में बसा लेना-उनमें आत्म सात हो जाना - प्रभुमय हो जाना।

या ते धामानि हविषा यजन्ति ता ते विश्वा परिभूरस्तु यज्ञम्। गयस्फानः प्रतरणः सुवीरोऽवीरहा प्रचरा सोम दुर्य्यान्।।37।।

(या) ये (ते) तेरा (धामानि) सारा ज्ञान-सारी सामर्थ्य (हविषा) परोपकार - कल्याण हेतु (यजन्ति) बना है (ता) वे (ते) तेरी (विश्वा परिभूः) सारी दुनियाँ भर की शक्तियाँ (अस्तु यज्ञम्) श्रेष्ठतम् कार्यों में लगनी चाहिये।

(गयस्फानः = गयाः प्राणाः स्फाय वृद्धौ) उन्नत हुई प्राण शक्ति (प्रतरणः) उनको भव सागर से पार लगा देती है (सुवीरः) ऐसे वीरों को (अवीरहा) परम शक्ति की कृपा से (प्रचरा) प्राप्त होती है (सोम दुर्यान) मन-मन्दिर की परम सुख और शान्ति।।

दुर्यान =घरों में। वैज्ञानिक साल्क ने पोलियों की बैक्सीन का आविष्कार किया और उसे पेटेंट कराने से इंकार करके यही चाहा कि यह खोज सारे संसार के बच्चों को पोलियो की बीमारी से बचा दे और संसार भर को समर्पित कर दिया। धन्य हो ऐसा इंसान।

अथ पंचमोऽध्यायः

(ऋषि- गोतम, श्यावाश्व, मेधातिथि, वसिष्ठ, दीर्घतमा औतथ्यो, मधुच्छन्दा, क्रत भार्गव, अगस्त्य। देवता - विष्णु, विष्णुर्यज्ञ, यज्ञ, अग्नि, विद्युत, सोम, वाक्, सविता, सूर्य्यविद्वांसौ, ईश्वरसभाध्यक्षौ, सोमसवितारौ, वनस्पति, कुशपतरुण, परशु। छन्द-बृहती, गायत्री, त्रिष्टुप, पंक्ति, उष्णिक् जगती।)

अग्नेस्तनूरसि विष्णवे त्वा सोमस्य तनूरसि विष्णवे त्वाऽतिथेरातिथ्यमसि विष्णवे त्वा श्येनाय त्वा सोमभृते विष्णवे त्वाऽग्नये त्वाꣳ रायस्पोषदे विष्णवे त्वा ।।1।।

हे मानव (अग्नेः तूनः असि) सम्पूर्ण ऊर्जा-शक्ति जो तेरे तन में है (विष्णवे त्वा) तुझे दीन-दुखियों की सहायता करने के लिए प्रभु ने दी है (सोमस्य तनूः असि) मरते हुओं को नवजीवन देने की भावना जो तेरे में है (विष्णवे त्वा) तेरे परोपकार की द्योतक है, (अतिथे) अचानक आने वाले अतिथि-ऋषिजनों के प्रति (आतिथ्यम् असि) उनके स्वागत सत्कार की भावना जो तुझ में है (विष्णवे त्वा) तेरे उत्तम गुणों को दर्शाती

(सोमभृते) आनन्द दायक है (विष्णवे त्वा) तेरी असहायों को सहारा देने की भावना (अग्नये त्वा) तेरी शक्ति (रायः) एवं तेरा धन का (पोष दे) सदुपयोग करना (विष्णवे त्वा) तेरे निस्वार्थ परोपकार की भावना को दिखाता है।।

अग्नेर्जनित्रमसि वृषणौ रथऽउर्वश्यस्यायुरसि पुरूरवाऽअसि। गायत्रेण त्वा छंदसा मन्थामि त्रैष्टुभेन त्वा छंदसा मन्थामि जागतेन त्वा छंदसा मन्थामि ।।2।।

हे मानव तू, (अग्नेः जनित्रम् असि) अपरिमित ऊर्जा एवं शक्ति पैदा करने वाला है (वृषणौ स्थः) परम शक्तिशाली-बलवान होकर भी (उर्वशी असि-उरु वशी) अपने आप पर पूरा नियन्त्रण रखने वाला है (पुरुरवा असि) मानव कल्याण में -समाज के उत्थान में लगाने वाला है।

(गायत्रेण त्वा छन्दसा; गयाः = प्राणाः, त्र= रक्षण, छन्द = इच्छा) आत्मिक शक्ति के रक्षण की तेरी इच्छा से (मन्थामि) मैं आलोडित होता हूँ, अर्थात् आनन्द विभोर होता हूँ (त्रेष्टुमेन त्वा त्रि-स्तुभ, काम-क्रोध-लोभ से परे होने की इच्छा से मैं आनन्दित होता हूँ (जागतेन त्वा छन्दसा मन्थामि) तेरी जगती के हित को सर्वोपरि की भावना से मैं आनन्दित होता हूँ।।

भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः ।।3।।

(सचेतसौ-चेतस्) अन्तर आत्मा से (अरेपसौ) बिना छल के-बिना किसी दुर्भावना के। (मा यज्ञम् हिंसिष्टम्) अपने जीवन यज्ञ को-परोपकार की भावना को बिना टूटे करते रहना (मा यज्ञ पतिं) और ध्यान रहे कल्याण कार्यो को करने का श्रेय लेने की भावना वाले मत बनना, (जात वेद सौ) हे ज्ञान से भरे-वेद की शिक्षाओं को पाए (शिवौ) कल्याणकारी (भवतम् अद्यनः) इस तरह तुम मेरे हो जाओगे।।

अग्नावग्निश्चरति प्रविष्टऽऋषीणां पुत्रोऽ अभिशस्ति पावा। स नः स्योनः सुयजा यजेह देवेभ्यो हव्यꣳ सदमप्रयुच्छन्त् स्वाहा ।।4।।

(अग्नाः अग्निश्चरति) प्रभु में लीन प्रभुमय हो जाता है (प्रविष्ट) पहुँच जाता है (ऋषीणां पुत्रः) ऋषिवरों की संतान की श्रेणी में (अभिशस्तिपावा) सभी प्रकार की हिंसाओ-शारीरिक, मानसिक, आार्थिक एवं सामाजिक रूप से की जाने वाली हिंसाओं से बहुत दूर

(स नः स्योनः) वह हमें जल्दी ले जाता है (सुयजाः) अच्छे कर्मो की ओर (यज्ञ इह)हमारे इस जीवन को सार्थक करते हुए (देवेभ्यो) देवतुल्य दानी, सौम्य, आलोकित और आनन्द विभोर (हव्यं) निस्वार्थ भावना से युक्त (सदम् अप्रयुच्छन) सदा, बिना समय बर्बाद किए (स्वाहा) सन्मार्ग पर।।

आपतये त्वा परिपतये गृह्णामि तनूनप्त्रे शाक्वराय शाक्वनऽओजिष्ठाय। अनाधृष्टमस्यनाधृष्यं देवानामोजोऽनभिशत्यभिशस्तिपाऽअनभिशस्तेन्यमंजसा

सत्यमुपगेषꣳस्विते मा धाः ।।5।।

हे मानव (आपतये) पूरी तरह से सक्षम (त्वा) तुझको (परिपतये) सुरक्षित (गृह्णामि)मैं मानता हूँ, (तनू नप्त्रे) अपने आप पर नियन्त्रित अनुशासित (शाक्वराय) सामर्थ्यवान (शक्वने) शक्तिमान और (ओजिष्ठाय) ओजस्वी।

(अनाधृष्टम्) जिसका कोई अपमान नहीं कर सकता (अनधृष्यं) और जो किसी दूसरे का अपमान नहीं करता-किसी को तुच्छ नहीं समझता (देवानाम ओजः) बड़े और श्रेष्ठ जनों की ताकत (अनभिशस्ति) टूटने नहीं देता (अनभिशस्तिपा) स्वयं भी नहीं टूटता है (अनभिशस्ति अन्यम्) तथा अपने से छोटों को भी नष्ट नहीं होने देता है, (अन्जसा) कुटिलता से परे (सत्यम् उपगेषं) सत्य को सर्वोपरि मानने वाला (स्विते) उत्तम आचरण वाला (मा धाः) हे प्रभु मुझे भी ऐसा बना दो।।

अञ्जसा= सीधी तरह से, यथावत, उचित रूप से।

अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनूरियꣳ सा मयि यो मम तनूरेषा सा त्वयि। सह नौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षां दीक्षापतिर्मन्यतामनु तपस्तपस्पतिः ।।6।।

हे मानव, (अग्ने) ज्ञान से भरे (व्रतपाः) उत्तम कर्मो पर दृढ़ रहने वाले (त्वे) तेरे (व्रतपा) उत्तम कर्म (या) पूरी तरह (तव तनूः) तेरा अस्तित्व हो जाऐं (इयं सा) यही तो हैं (मयि) मुझ में (यो=या+उ) और जो (मम तनू) मेरा अस्तित्व हैं (एषा सा त्वयि) ठीक वही तेरे हों (सह नः उ) और हमारे सहयोग से (व्रतपते) उत्तम कर्म करने वालों के (व्रतानि) उत्तम कर्म (अनु मे दीक्षाम्) मेरी शिक्षाओं का सार हों (दीक्षा पतिम्) और वे दीक्षित (अन्यताम्

त्रुटि सुधार देखें

का व्रत सफल हो।।

अꣳशुरꣳशुष्टे देव सोमाप्यायतामिन्द्रायैकधनविदे। आ तुभ्यमिन्द्रः प्यायतामा त्वमिन्द्राय प्यायस्व। आप्याययास्मान्त्सखीन्त्सन्न्या मेधया स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामशीय। एष्टा रायः प्रेषे भगायऽ ऋतुमृतवादिभ्यो नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ।।7।।

(अंशुः अंशुः) एक एक कतरा (इष्टे देव) प्यारे देवतुल्य मानव तू (सोम आप्यायताम्) सुख और शान्ति बढ़ाने हेतु (इन्द्राय) वैभव और शक्ति के हेतु (एकधन विदे) ऐसा धन अर्जित कर (आ) जो निश्चय से (तुभ्यम् इन्द्रः प्यायताम्) तेरी कीर्ति को बढ़ाने का कारण बने (त्वम् इन्द्राय प्यायस्व) और तू परम प्रभु का प्यारा बन जाऐ।

(आप्याय अस्मान् सखीन्) बढ़ाओ अपने ऐसे मित्रों का दायरा जो तुझे उन्नति पथ पर ले जाऐं (सन्नया मेधया) और तेरा मानसिक स्तर ऊँचा हो जाऐ (स्वस्ति ते देव) कल्याण हो तेरा देवत्व गुणों से (सोम सुत्याम् अशीय) सुख एवं शान्ति पैदा हो जाए तेरे अन्तर मन में।

(आ इष्टा रायः) हाँ ऐसे प्राप्त हुए धन (प्रइषे) और ऐसी कामनाओं के लिए (भगाय) हमेशा आगे बढ़ना (ऋत् अमृत वादिभ्यः) सत्य रूपी अमृत के लिए (नमः) प्रयत्नशील रहना, (द्यावापृथिवीभ्याम्) अपने विचारों-आदर्शों को उच्च और दृढ़ रखते हुए।।

या ते अग्नेऽयः शया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं

वचोऽअपावधीत्त्वेषं वचोऽअपावधीत् स्वाहा। या तेऽअग्ने रजः शया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचोऽअपावधीत्त्वेषं वचोऽअपावधीत् स्वाहा। या तेऽअग्ने हरिशया तनूर्वर्षिष्ठा गह्वरेष्ठा। उग्रं वचोऽअपावधीत्त्वेषं वचोऽअपावधीत् स्वाहा ।।8।।

(या ते) यह जो तेरी (अग्ने) कार्य करने की अपार क्षमता है- तेरे में आत्म विश्वास है (अयः) तेरे पूर्व जन्मों के अच्छे कर्मों के कारण (शया) तुझमें समाए हुए हैं (तनूः वर्षिष्ठा) तुझको निरन्तर आगे बढ़ाते हैं- आगे से आगे बढ़ने की स्फूर्ति देते हैं (गह्वरेष्ठा) वे तेरे में पूरी तरह समाए हुए हैं।

(उग्रं) दूसरों के लिए कठोर (वचः) वचन (अपावधीत) दूर रखना (त्त्वेषंवचः) गर्वपूर्ण वचन (अपावधीत) दूर रखना (स्वाहा) स्व-''अपने लिए'' की भावना का त्याग करना।

(या ते अग्ने) यह जो तेरी शक्ति है (रजः शया) माँ-बाप से मिले संस्कारों का फल हैं (तनूः वर्षिष्ठा) तुझको आगे बढ़ने की स्फूर्ति देते हैं (गह्वरेष्ठा) तेरे अन्तरमन में गहराई से समाए हुए हैं

(उग्रं वचः) दूसरों को कष्ट पहुँचाने वाले वचन (अपावधीत) मत बोलना (त्त्वेषं वचः) धमंड से भरे वचन (अपावधीत) मत बोलना (स्वाहा) समर्पण की भावना अपनाना।

(या ते अग्ने) यह जो तेरी ऊर्जा है (हरि शया) प्रभु की कृपा से है (तनूः वर्षिष्ठा) तुझ को आगे बढ़ने की प्रेरणा देती है (गह्वरेष्ठा) वही तेरे

में भरी हुई है (उग्रंवचः) कठोर वचन (अपावधीत) मत बोलना (त्वेषं वचन) बड़ बोले वचन (अपावधीत) मत बोलना (स्वाहा) त्याग की भावना रखना।।

तप्तायनी मेऽसि वित्तायनी मेऽस्यवतान्मा नाथितादवतान्मा व्यथितात् । विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअंगिरऽआयुना नाम्नेहि योऽस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधेविदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअंगिरऽआयुना नाम्नेहि यो द्वितीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे विदेदग्निर्नभो नामाग्नेऽअंगिरऽआयुना नाम्नेहि यस्तृतीयस्यां पृथिव्यामसि यत्तेऽनाधृष्टं नाम यज्ञियं तेन त्वा दधे। अनु त्वा देववीतये ।।9।।

(तप्तायनी) संस्कारों से तपा कर पवित्र हुआ (मे असि) मैं जो हूँ (वित्तायनी) अच्छे प्रकार से अर्जित किया हुआ जो धन (मे असि) मेरे पास है (अवतात्) बचाता है मुझे (नाथितात्) बुरे कर्मो-पापों से (अवतात् मा) बचाता है मेरी अन्तर आत्मा को (व्यथितात्) व्यथित होने से-आत्मिक कष्टों से।

(विदेत्) प्रभु मुझे प्राप्त कराऐं (अग्निः) ऐसी शक्ति (नभो) ऐसी कीर्ति (नाम्ना) जो नम्रता भरी हो (अग्ने) ऐसी ऊर्जा जो (अङ्गिरः) अङ्ग अङ्ग मे बसी हो (आयुना) आजीवन (नाम्ना) ऐसा यश (इहि) हमें प्राप्त हो (यः) जो (अस्या) हमारे विचारों को (पृथिव्याम्) मजबूत करें (असि) हमें (यत् ते) यह जो आपकी (अनाधृष्टम्) अपराजित - सबको जीतने वाली (नाम) नम्रता (यज्ञियम्) निस्वार्थ सबका भला

करने की भावना है (तेन) उस (त्वा) आपकी भावना को (द्धे) धारण करता हूँ (विदेत् .... द्वितीयस्याम् ...... त्वा दधे) ऐसी प्रसिद्धि जो नम्रता से भरी हो, ऐसी ताकत जो अङ्ग-अङ्ग मे बसी हो, आजीवन नम्रता के गुण हमें प्राप्त हों जो हमारे मन को दृढ़ बनाऐं, हमें सब पर जो हमेशा विजय दिलाने वाली नम्रता और निस्वार्थ भाव से सबका भला करने की आपकी दी हुई भावना है, उसको मैं धारण करता हूँ (विद्ते .... तृतीयस्यां .... त्वा दधे) मुझे मिले ऐसी क्षमता, ऐसा यश जो नम्रता से भरा हो, ऐसी ताकत जो कण कण में बसी हो, आजीवन नम्रता के गुण मुझ में समाए रहें, जो हमारी आत्मा को दृढ़ बनाऐ मैं आपकी हर जगह विजय दिलाने वाली विनय शीलता को धारण करता हूँ। (अनुत्वा) मैं आपका अनुगामी हूँ (देववीतये) देव तुल्य बन जाने के हेतु।।

सिꣳह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः कल्पस्व सिꣳ ह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः शुन्धस्व सिꣳ ह्यसि सपत्नसाही देवेभ्यः शुंभस्व ।।10।।

(सिंही असि) सारी बुराइयों को नष्ट करने वाली है वेदवाणी (सपत्नसाही) इसके ज्ञान से शत्रुओं-काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ और मत्सर का नाश होता है (देवेभ्यः) देव तुल्य गुण-कर्म-स्वभाव के लोगों के लिए (कल्पस्व) सामर्थ्य देने वाली है (सिंही.....शुन्धस्व) सारे दुर्गुणों को नाश करने वाली वेद की शिक्षाऐं शत्रुओं का नाश कर के उत्तम मन-वचन-कर्म के लोगों के लिए शोधन का कार्य करती हैं, (सिंही ..... शुम्भस्व) सारे पाप कर्मो को नष्ट करने वाली हैं उत्तम शिक्षाऐं जो शत्रुओं का नाश करके सच्चरित्र लोगों के लिए उनके जीवन को सुन्दर बनाती हैं और आनन्द से भर देने वाली हैं।

सिंहः = श्रेणी में प्रमुख, सर्वोत्तम। शुन्धस्व = शोधन का कार्य। साहयम् = सहायता, मदद, सहयोग। शुम्भस्व = सुन्दर, आनन्द मयी।

इन्द्रघोषस्त्वा वसुभिः पुरस्तात्पातु प्रचेतास्त्वा रुद्रैः पश्चात्पातु मनोजवास्त्वा पितृभिर्दक्षिणतः पातु विश्वकर्मा त्वादित्यैरुत्तरतः पात्विदमहं तप्तं वार्बहिर्धा यज्ञान्निः सृजामि ।। 11।।

हे मानव (इन्द्र घोषः) परमेश्वर की वाणी (त्वा) तुझे (वसुभिः) श्रेष्ठ जनों की भांति (पुरस्तात्) आगे आने वाले (पातु) पतन से बचाऐगी (प्रचेताः) गुरूओं की शिक्षा (त्वा) तुझे (रुद्रैः) कठिन, रुला देने जैसी परिस्थितियों में (पश्चात्) हर समय पीछे से (पातु) रक्षा करेगी (मनोजवाः) शिक्षाओं से जागृत हुआ तेरामन (त्वा) और तेरे (पितृभिः) माँ-बाप और पूज्य जनों के संस्कार (दक्षिणतः) दाहिनी ओर से तेरी (पातु) रक्षा करेंगे (विश्व कर्मा) ढेर सारे किए हुए शुभ कर्म (त्वा) और तेरा (आदित्यैः) ऋषिजनों का सत्सङ्ग तुझे (उत्तरतः) बाई की ओर से तेरी (पातु) रक्षा करेंगे (इदं अहम्) ये मैं (तप्तंवाः) तेरी दुख देने वाली दुर्भावनाओं दुर्व्यसनों, दुश्कर्मो को (बहिर्धा) बाहर करके (यज्ञात्) सद्भावनाओं, सत्कर्मो को (निः सृजामि) निश्चय से पैदा करता हूँ।।

इन्द्रघोष = प्रभु की वाणी-वेदों की शिक्षा।

सिꣳह्यसि स्वाहा सिꣳह्यस्यादित्यवनिः स्वाहा सिꣳह्यसि ब्रह्मवनिः क्षत्रवनिः स्वाहा सिꣳह्यसि सुप्रजावनी

रायस्पोषवनिः स्वाहा सिꣳहस्यावह देवान्यजमानाय स्वाहा भूतेभ्यस्त्वा ।।12।।

(सिंही असि) सर्वोत्तम है तू- वेदवाणी (स्वाहा) यह सत्य है (सिंही असि) सर्वोत्तम है (आदित्यवनिः) ज्ञान का प्रकाश देने में (स्वाहा) यह सत्य है (सिंह असि) सर्वोत्तम है (ब्रह्मवनिः क्षत्रवनिः) विद्वान-श्रेष्ठ और एक सच्चा इंसान बनाने में साथ ही शक्तिमान बनाने में (स्वाहा) यह सत्य है (सिंही असि) सर्वोत्तम है (सुप्रजावनी) सन्तानों को संस्कार देने वाली (रायः पोषवनिः) उत्तम धन से भर देने वाली है (स्वाहा) यह सत्य है (सिंही असि) सर्वोत्तम है (आवह) ले जाती है (देवान् यजमानाय) यजमानों को जो इसकी शिक्षाओं का अनुसरण करते है, को देवत्व गुणों की ओर (स्वाहा) यह सत्य है (भूतेभ्यः त्वा) सब प्राणियों की हित चिंतक है तू।।

ध्रुवोऽसि पृथिवीं दृꣳह ध्रुवक्षिदस्यन्तरिक्षं दृꣳहाच्युतक्षिदसि दिवं दृꣳहाग्नेः पुरीषमसि ।।13।।

हे मानव (ध्रुवः असि) तू ध्रुव है- लोग तेरी स्तुति करें अथवा निन्दा, धन आए या जाऐ, जीवन रहे या न रहे तू सत्य के मार्ग से विचलित होने वाला नहीं है (पृथिवीं दृंह) तू अपने शरीर को दृढ़ बनाना (ध्रुवक्षित असि; ध्रुव=मर्यादा, क्षि=गति) मर्यादित, मर्यादाओं में चलने वाला है (अन्तरिक्षम्) अपने हृदयाकाश को (दृंह) दृढ़ रखना (अच्युत क्षि असि) तू अपने सत्य के मार्ग से कभी ना डिगते हुए चलते रहना (दिवं दृंह) तू अपने विचारों को सदैव परिष्कृत करते हुए उन पर दृढ़ रहना (अग्नेः) परम प्रभु (पुरीषम् असि) तेरे साथ हैं।।

युंजते मनऽउत युंजते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः। वि होत्रा दधे वयुनाविदेकऽइन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः स्वाहा ।।14।।

हे मानव (युञ्जते) एक अच्छे उद्देश्य में लगाना (मनः) मन को (उत) और (युञ्जते) रम जाना अर्थात् गहराई तक डूब जाना (धियः) अपनी बुद्धि से -मन से - आत्मा तक (विप्रा) और प्राप्त करना (विप्रस्य) प्राप्त करने के योग्य (बृहतः) महान बनाने वाला (विपश्चितः) प्रभु का ज्ञान-वेद की शिक्षाऐं

(विहोत्रा) वेदों की शिक्षाऐं (दधे) उपहार स्वरुप हैं, धारण करने योग्य हैं (वायुना वित्) ऋषितुल्य लोगों की तरह पवित्र करने वाली (एकः इत) एक अकेली हैं इस (मही) धरती पर (देवस्य) देवत्व के गुणों को (सवितुः) पैदा करने में (परिष्टुतिः) सक्षम और (स्वाहा) प्राणिमात्र का भला करने के लिए।।

दध् = उपहार देना, धारण करना, पास रखना

इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्। समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा ।।15।।

(इदं) इस सम्पूर्ण सृष्टि को (विष्णुः) पालन हारे परमात्मा ने (विचक्रमे) एक विशेष क्रमपूर्वक-वैज्ञानिक आधार पर बनाया है (त्रेधापदम्) इसमें तीन स्तर-अन्तरिक्ष-द्युलोक और पृथ्वी (निदधे) रक्खे हैं। (समूढम्) सम्यक् निर्माण और उनका फैलाव (अस्य) प्रभु का कर्म वैचित्र्य है (पांसुरे) परमाणुओं से मिलाकर इतने विशाल ब्रह्माण्ड

की रचना करना (स्वाहा) यह एक परम सत्य है।।

इरावती धेनुमती हि भूतꣳ सूयवसिनी मनवे दशस्या। व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्त्थ पृथिवीमभितो मयूखैः स्वाहा ।।16।।

(इरावती) विभिन्न प्रकार के अन्न की फसलें, फल, फूल, सब्जियाँ इत्यादि देने वाली (धेनुमती) विभिन्न प्रकार के दुधारु पशुओं द्वारा दूध से पालन करने वाली (हि) साथ ही (भूतम्) प्राणियों का(सूयवसिनी) हर प्रकार से पालन करने वाली (मनवे) निस्वार्थ रुप से (दशस्या) दसों दिशाओं वाली धरती माँ (व्यस्कभ्ना) विशेष रूप से स्थित है (रोदसी) अन्तरिक्ष और द्युलोक में (विष्णु) पालन हारे प्रभु (एते) इनके द्वारा (दाधर्थ) धारण व पोषण करने हेतु (पृथिवीम्) धरती माँ को (अमितः) सामने से (मयूखैः) सूर्य की रोशनी और ऊष्मा से (स्वाहा) संवारते हैं।।

देवश्रुतौ देवेष्वाघोषतं प्राची प्रेतमध्वरं कल्पयन्तीऽऊर्ध्वं यज्ञं नयतं मा जिह्वरतम्। स्वं गोष्ठमावदतं देवी दुर्य्येऽआयुर्मा निर्वादिष्टं प्रजां मा निर्वादिष्टमत्र रमेथां वर्ष्मन् पृथिव्याः ।।17।।

हे मानव (देवश्रुतौ-दिव्य विद्याश्रुतौ) सम्पूर्ण विषयों का ज्ञान विज्ञान (देवेषु) गुरुजनों के चरणों में बैठ कर (अघोषतम्) प्राप्त करो (प्राची प्रेतम) पिछली शिक्षाओं और अनुभवों का लाभ लेते हुए आगे बढ़ते जाओ; अकर्मण्य होकर मत रहो उन्नतिशील बनो, (अध्वरं कल्पयन्ती) हिंसा रहित-किसी को भी नुकसान पहुँचाए बिना-कर्मयोगी

(यज्ञं) सबके हितों को ध्यान में रखकर (ऊर्ध्व नयतं) ऊपर उठते जाओ (मा जिह्वरतम)किसी भी प्रकार की कुटिलता ना करते हुए।

(स्वं गोष्ठम) अपने पवित्र संसार को (आवदतम्) प्रसिद्धि तक पहुँचाओ, (देवी दुर्ये) अपने घर को दिव्य गुणों से भर दो (आयुःमा निर्वादिष्टम) अपने जीवन को निन्दनीय ना होने दो (प्रजां मा निर्वादिष्ट) अपनी सन्तानों को भी निन्दनीय ना होने दो (अत्र रमेथां) इस तरह सुखी रहो (वर्ष्मन् पृथिव्या) देवत्व की भावनाओं पर दृढ़ रहते हुए।।

विष्णोर्नुकं वीर्याणि प्रवोचं यः पार्थिवानि विममे रजाꣳसि। योऽअस्कभायदुत्तरꣳ सधस्थं विचक्रमाणस्त्रेधोरुगायो विष्णवे त्वा ।।18।।

(विष्णुः) पालन हारे-प्रभु (नुकं) निश्चय रूप से खिंचाव के (वीर्याणि) बल पर (प्रवोचम्) आकर्षित करते हैं (यः पार्थिवानि) जो अन्तरिक्ष में अनेकों ग्रह नक्षत्र (विममे) विविधता से भरे (रजांसि) लोक लोकान्तर हैं और (यः) उनको (अस्कभायत्) थामे हुए हैं (उत्तरम्) इतनी अच्छी तरह तथा (सधस्थम्) रोके हुए हैं (विचक्रमाणः त्रेधा) तीन प्रकार से गतिमान करते हुए (उरुगायः) विशेष क्रमानुसार (विष्णवे त्वा) तुम्हारी रक्षा करने के लिए।।

कम् = अनुराग, खिंचाव, प्रेम। नु = प्रश्न वाचकता का द्योतक; सम्भावना और अवश्य के अर्थों को बतलाने के लिए इसे प्रश्नवाचक सर्वनाम के साथ जोड़ देते हैं। प्रकर्षणम् = खींचने की क्रिया, आकर्षण, Force. उरु = विस्तृत, महान, बड़ा, अतिशय, श्रेष्ठ, मूल्यवान। गायः = गाना, गीत, भजन, लय बद्ध।

दिवो वा विष्णऽउत वा पृथिव्या महो वा विष्णऽउरोरंतरिक्षात्। उभा हि हस्ता वसुना पृणस्वा प्रयच्छ दक्षिणादोत सव्याद्विष्णवे त्वा ।।19।।

(दिवः वा) हलचल भरा हो अथवा (विष्णऽउत) जीने का दूसरा विकल्प (पृथिव्या) गम्भीर हो, (महः) रोशनी से भरा हो (वा) अथवा (विष्ण) जीने का विकल्प (उरु) बेहद-नितान्त (अन्तरिक्षात्) अन्धकार मय (उमा हि) दोनों ही (हस्ता) परिस्थिति में (वसुना) हे श्रेष्ठ जन (पृणस्वा) चुनना है (प्रयच्छ) ओ आत्मसंयमी तुझे (दक्षिणात उत सव्यात) सीधा अथवा उल्टा विकल्प (विष्णवे त्वा) अपनी रक्षा के लिए।।

अ = बिस्मयादिबोधक अव्यय के रूप में प्रयुक्त स्वीकृति 'हाँ', दया 'आह' पीड़ा या खेद, अहो-मोह। विश् = प्रविष्ट होना, जाना, दाखिल होना। दिव् = चमकना, खेलना, क्रीड़ा करना, स्वर्ग, आकाश, दिन, प्रकाश, उजाला। उत = निम्नांकित भावनाओं की अभिव्यक्त करने वाला अव्यय - सन्देह, अनिश्चितता, अनुमान, विकल्प, साहचर्य। महः = उत्सव, त्यौहार, उपहार। पृ = काम पर लगाना, नियत करना। प्रयत् = जितेन्द्रिय, पावन साधनाओं से जिसने अपने को पवित्र बना लिया है।

प्रतद्विष्णु स्तवते वीर्य्येण मृगो न भीमः कुचरो गिरिष्ठाः। यस्योरुषु त्रिषु विक्रमणेष्वधिक्षियन्ति भुवनानि विश्वा ।।20।।

(प्र) प्रभु (तत् विष्णु स्तवते) इसलिए रक्षक के रूप में स्तुति

किए जाते हैं क्योकि अपने (वीर्येण) प्रभाव से, बल से (मृगो न भीमः) हमारे जीवन को सार्थक-सात्विक बनाते हैं कठोर नहीं वे (कुचरो-कौ चरति) सर्वव्यापक हैं- हर जगह विचरण करते हैं (गिरिष्ठाः) जैसा कि वेद वाणी बताती हैं

(यस्य) उनका (उरुषु) विस्तार (त्रिषु) तीनों (विक्रमणेषु) लोकों में है (अधिक्षियन्ति) और निवास (भुवनानि विश्वा) चर-अचर जगत में सब जगह है ।।

प्र = अव्यय धातुओं के पूर्व उपसर्ग के रूप में लगकर इसका अर्थ है 'आगे की ओर 'पहले' 'दूर', संज्ञाओं के पूर्व लगकर, आरम्भ, शक्ति यथा प्रभु, पूर्णता।

विष्णो रराट्मसि विष्णोः श्नप्त्रे स्थो विष्णोः स्यूरसि विष्णोर्ध्रुवोऽसि। वैष्णवमसि विष्णवे त्वा ।।21।।

(विष्णो) परम प्रभु (रराट्मसि) तेरे ललाट-विचारों में, मन में बसे हैं (विष्णोः श्नप्त्रे स्थ) प्रभु तेरे ओठों-वाणी में बसे हैं (विष्णोः स्यूः असि) प्रभु तो तेरे हृदय में बसे हैं (विष्णोः ध्रुवः असि) प्रभु तेरा पूरा अस्तित्व बन चुके हैं। (वैष्णवम् असि) प्रभुमय हो गया है तू (विष्णवे त्वा) प्रभु के संरक्षण में आकर।।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आददे नार्यसीदमहꣳ रक्षसां ग्रीवाऽअपिकृन्तामि। बृहन्नसि बृहद्रवा बृहतीमिन्द्राय वाचं वद ।।22।।

हे मानव (देवस्य त्वा सवितुः) परम रचनाकार प्रभु ने तुझे संसार

के भले के लिए चुना है (प्रसवे) इस निर्मित संसार की (अश्विनो बाहुभ्यां) अपने बाहुबल से रक्षा कर (पूष्णो हस्ताभ्याम्) अपने हाथों से इसको और भी खूबसूरत बना।

(आददे) विश्वास रखो (नारिः असि इदं अहम्) कि अच्छे निर्माण कारी कार्यों के करने वालों का मैं दुश्मन नही हूँ (रक्षसां) परन्तु विध्वंस करने वालों स्वार्थी तत्वों की (ग्रीवा अपि कृन्तामि) गर्दन ही काट देता हूँ।

(बृहन्नसि) शक्तिशाली हूँ (बृहद् रवाः) शुभ मंगलकारी उपदेश देने वाला (बृहतीम्) ऊँचा उठाने वाली (इन्द्राय) सुख-समृद्धि देने वाली (वाचं) वेद की शिक्षाओं को (वद्) सभी को बता।।

आददे = ग्रहण करना। बृह = बढ़ना, फैलना। बृहत् = विस्तृत, विशाल चौड़ा, मजबूत, शक्तिशाली।

रक्षोहणं वलगहनं वैष्णवीमिदमंह तं वलगमुत्किरामि यं मे निष्ट्यो यममात्यो निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे समानो यमसमानो निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे सबन्धुर्यम सबन्धुर्निचखानेदमहं तं वलगमुत्किरामि यं मे सजातो यमसजातो निचखानोत्कृत्यांकिरामि ।।23।।

वेदवाणी (रक्षोहणम्) सारी राक्षसी वृत्तियों को समाप्त कर देती है, (वलगहनम्) मन में बैठे विकारों-बुरे विचारों को नष्ट करने वाली है, (वैष्णवीम्) पवित्र बनाने वाली है-रचनात्मक है- निर्माण करने में सहायक है अतः, (इदम) अब (अहम्) मैं (तं वलगम) उन बुरे विचारों

को (उत्किरामि) नष्ट कर दूँगा, (यं मे) जो मुझे (निष्टय:) बाहर वाले (यं अमात्य:) और जो साथ वालों ने (निचरवाद) मेरे में पैदा कर दिए हैं (इदम् अहम्) उनको मैं (तं वलगम) उन बुरे विचारों को (उत्किरामि) उखाड़ फेंकूँगा; (यं मे) जो मुझे (समान:) मेरे जैसे (यं असमान:) और जो मेरे जैसे नहीं हैं (निचखान) मेरे मन में बैठा देते हैं (इदं अहम्) उन (तं बलगम) बुरी भावनाओं को (उत्किरामि) मैं उखाड़ फेकूँगा (यं मे) जो मेरे (सबन्धु) बन्धु बान्धव तथा (यम् असबन्धु:) जो रिश्तेदार नहीं हैं वे (निचखान) मेरे अन्तर मन में गाढ़ देते हैं (इदम् अहम्) उन सारी (तं बलगम) बुरी भावनाओं को (उत्किरामि) उखाड़ फेंकता हूँ (यम् मे) और जो मुझे (सजात:) मेरे जाति वाले (यम् असजात:) और जो जाति से परे के लोग है- दूर के लोग है (निचखान) मेरे मन में गाढ़ देते हैं (कृत्याम्) मै वें भेदन करने वाली-तोड़ने वाली बातें (उत्किरामि) निश्चय से उखाड़ फेंकता हूँ।।

स्वराडसि सपत्नहा सत्रराडस्यभिमातिहा जनराडसि रक्षोहा सर्वराडस्यमित्रहा ।।24।।

हे मानव (स्वराट् असि) तू आत्मनियन्त्रित है (सपत्नहा) तूने काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ और मत्सर को जीत लिया है, (सत्रराट् असि) विनयशील, उदारमना, यज्ञसमान, तू तो स्वयं आहुति हो चुका है (अभिमाति हा) तूने अभिमान को समाप्त कर दिया है, (जनराट् असि) तू जन-जन का चहेता-वैष्णवजन हो चुका है (रक्षोहा) तूने राक्षसी भावनाओं पर विजय पा ली है (सर्वराट् असि) तू सबके दिलों को जीतने वाला बन गया है (अमित्र हा) यहाँ तक कि दुश्मनों को भी जीतने वाला हो गया है। तेरे लिए वसुधैव कुटुम्बकम् बन चुका है।।

राक्षसी भावनाऐं - दूसरों को दुख पहुँचा कर, दुखी देखकर आनन्द प्राप्त करना। अपने स्वार्थ के लिए दूसरे का बड़े से बड़ा अनिष्ट कर देना। केवल अपने लाभ के बारे में सोचना।

रक्षोहणो वो वलगहनः प्रोक्षामि वैष्णवान्रक्षोहणो वो वलगहनोऽवनयामि वैष्णवान्रक्षोहणो वो वलगहनोऽवस्तृणामि वैष्णवान्रक्षोहणौ वां वलगहनाऽउपदधामि वैष्णवी रक्षोहणौ वां वलगहनौ पर्यूहामि वैष्णवी वैष्णवमसि वैष्णवा स्थ।।25।।

श्रेष्ठ मानव (रक्षो हणो) राक्षसी भावनाओं पर विजय पाने वाले (वः) तुम (वलगहनः) मन में बैठे बुरे विचारों को जीतने वाले हो जाओ (प्रोक्षामि) मैं तुम्हे ज्ञान से भर देता हूँ, (वैष्णवान्) हे दयावान, पवित्रात्मा (रक्षोहणः) राक्षसी वृत्तियों के जयी (वः) तुम (वलगहनः) शुद्ध मन हो जाओ (अवनयामि) मैं सारे बुरे विचारों को तुमसे दूर ले जाता हूँ (वैष्णवान्) हे वैष्णव जन (रक्षोहणः) राक्षसी कर्मो से दूर हुऐ (वः) तुम (वलगहनः) सद्‌चरित्र हो (अवस्तृणामि) मैं तुम्हे संसार भर के कष्टों से दूर ले चलता हूँ, (वैष्णवान्) दूसरों का दुःख दर्द समझने वाले (रक्षोहणः) बुरी बातों से परे हुए (वः) तुम (वलगहनः) पवित्र कर्मो में लगे हुए (उपद्धामि) मै तुम्हें अपने पास बुलाता हूँ (वैष्णवी) यह पवित्र बनाने वाली वेद वाणी (रक्षोहणौ) राक्षसी भावों को नाश करने वाली (वाम्) कल्याणकारी भावना वाली (वलगहनौ) पवित्रात्माओं को (पर्यूहामि-परिउहामि-परिप्रापयामि) सारे सन्देहों से परे ले जाती है, (वैष्णवी) यह वेद वाणी,शाश्वत ज्ञान से भरी है (वैष्णवम् असि) पवित्र बनाने वाली-इन्सानियत सिखाने वाली है (वैष्णवाः स्थ) तुम को प्रभु की

श्रेष्ठ संतान बनाने के लिए।।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। आददे नार्यसीदमहꣳ रक्षसां ग्रीवाऽअपिकृन्तामि। यवोऽसि यवयास्मद् द्वेषो यवयारातीर्दिवे त्वाऽन्तरिक्षाय त्वा पृथिव्यै त्वा शुन्धान्तांल्लोकाः पितृषदनाः पितृषदनमसि।।26।।

(देवस्य) परोपकारी कर्मों को (त्वा) प्रभु तू ही (सवितुः) सिखाने वाला है (प्रसवे) पैदा करने में (अश्विनोः बाहुभ्यां) बाहुबल से और उनको (पूष्णौ हस्ताभ्याम्) सूबसूरत-पल्लवित करने में हाथों द्वारा। (आददे) हाँ परोपकार में (नारी असि) ताकत है (इदम्) मै इन (रक्षसां) स्वार्थी भावनाओं की (ग्रीवा अपि कृन्तामि) गर्दन ही काट देता हूँ।

(यवः असि) छोटी सी बात है (यवय) दूर हो जाऐं (अस्मत्) हमारी (द्वेषः) दुश्मनियाँ (यवय) दूर हों (अरातीः) ओछेपन की भावनाऐं (दिवे) हमें राह दिखा (त्वा अन्तरिक्षाय) तू दिल की उदारता और विशालता के लिए (त्वा पृथिव्यै) तू दृढ़ता के लिए (त्वा शुन्धन्ताम् लोकाः) तू मेरा सम्पूर्ण वजूद पवित्र कर दे (पितृषदनाः) ज्ञानी पूर्वजों की तरह (पितृषदनम् असि) मैं भी उनके जैसा ज्ञानी हो जाऊँ।।

उद्दिवꣳ स्तभानान्तरिक्षं पृण दृꣳहस्व पृथिव्यां द्युतानस्त्वा मारुतो मिनोतु मित्रावरुणौ ध्रुवेण धर्मणा। ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि रायस्पोषवनि पर्यूहामि। ब्रह्म दृꣳह क्षत्रं दृꣳहायुर्दृꣳह प्रजां दृꣳह।।27।।

श्रेष्ठ मानव (उत् दिवं स्तभान) उस रोशनी भरे रास्ते पर मजबूती से बने रहना (अन्तरिक्षम् पृण) हृदयाकाश को परिपूर्ण करना ताकि इसे वासनाऐं प्रदूषित ना करें (दृंहस्व पृथिव्यां) मजबूती के साथ दृढ़ बने रहना ताकि तुझे काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, और मत्सर तोड़ ना सकें, (द्युतानः त्वा) तेरे विचार (मारुतः) गतिशील, जीवनदायी और परोपकारी हों (मिनोतु) विषय वासनाओं से परे (मित्रावरुणौ) प्यारे सखा प्रभु (ध्रुवेण धर्मणा) तुझे धर्म के मार्ग पर स्थिर रक्खें।

(ब्रह्मवनि त्वा) ज्ञानवान है तू (क्षत्रवनि त्वा) शूरवीर है तू (रायस्पोषवनि) पवित्र धन-सम्पत्ति का स्वामी (पर्यूहामि) तुझे मैं अपने समीप लेता हूँ अर्थात्-प्रभु का परम प्रिय बनाता हूँ।

(ब्रह्म दृंह) ज्ञान को बढ़ा, (क्षत्रं दृंह) पौरूष को बढ़ा (आयुः दृंह) दीर्घायु बन (प्रजां दृंह) अपनी अगली पीढ़ी को मजबूती प्रदान कर।।

ध्रुवासि ध्रुवोऽयं यजमानोऽस्मिन्नायतने प्रजया पशुभिर्भूयात्। घृतेन द्यावा पृथिवी पूर्येथामिन्द्रस्य छदिरसि विश्वजनस्य छाया ।।28।।

(ध्रुवासि) जो ध्रुव है -सत्य है-सनातन है (ध्रुवोअयम्) वह ध्रुव मैं हूँ (यजमानः) हे पवित्र आत्माओं (अस्मिन् आयतने) मेरे इन दायरों में (प्रजया पशुभिः भूयात्) अपनी सन्तानों और पशुओं के साथ फलो-फूलों। (घृतेन) अपने दोषों को दूर कर ज्ञान की ज्योति से (द्यावा पृथिवी) अपनी आत्मा और शरीर को (पूर्येथाम्) पल्लवित करो

(इन्द्रस्य) परमेश्वर की (छदिः असि) तुम पर छत्रछाया बनी रहेगी (विश्व जनस्य छाया) संसार के बनाने वाले की अपार कृपा के पात्र बने रहोगे।।

परि त्वा गिर्वणो गिरऽइमा भवन्तु विश्वतः। वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ।।29।।

हे श्रेष्ठ मानव (परि त्वा) चारों ओर हैं तुम्हारे (गिर्वणः-गीर्मिः स्तोतुमर्हः) परम प्रभु जिनकी महिमा और शिक्षा वेदों ने गाई हैं (गिरः इमा) उन स्तुतियों और शिक्षाओं को (भवन्तु विश्वतः) सारे संसार में फैला दो (वृद्धायुम् अनु) अपने श्रेष्ठ पूर्वजों की तरह (वृद्धयः जुष्टयः) पूर्वजों के प्रिय कार्यो को सम्पन्न करने में (भवन्तु जुष्टयः) प्रसन्न मन पूरी ताकत से जुट जाओ।।

गिर् = शब्द, भाषण, स्तुति, गीत, विद्या और वाणी की देवी सरस्वती। जुष्ट = प्रसन्न, सन्तुष्ट, अभ्यस्त, आश्रित, देखा हुआ, भुगता हुआ।

इन्द्रस्य स्यूरसीन्द्रस्य ध्रुवोऽसि। ऐन्द्रमसि वैश्वदेवमसि ।।30।।

हे श्रेष्ठ मानव (इन्द्रस्य) परमेश्वर के साथ (स्यूः असि) तू जुड़ चुका है, (इन्द्रस्य) परमेश्वर के साथ ही (ध्रुवो असि) दृढ़ता से जुड़े रहना।

(ऐन्द्रम् असि) तू प्रभु मय हो गया है (वैश्व देवम् असि) संसार भर के दिव्य- उत्तमोत्तम गुणों से भरा हुआ है।।

विभूरसि प्रवाहणो वंहिरसि हव्यवाहनः। श्वात्रोऽसि प्रचेतास्तुथोऽसि विश्ववेदाः ।।31।।

हे मानव (विभूः असि) तू योग्य और शक्तिशाली है (प्रवाहणः) औरों को भी गति देने वाला है, औरों को भी प्रभु की शरण में ले जाने में सक्षम है, (वंहिःअसि) तुझ में ऊर्जा है–आग है (हव्य वाहनः) तू तो प्रभु तक पहुँचाने वाला है, लोगों को सत्य के मार्ग पर ले जाने वाला है। (श्वात्रः असि) तू वेगवान है (प्रचेताः) तेरा अन्तर्मन जागृत है, (तुथः असि) तू प्रभु का सही रूप में प्रतिनिधि है–उनकी आवाज है (विश्व वेदाः) सारे संसार के ज्ञान से परिपूर्ण है।।

विभु = सर्वोपरि, योग्य, ताकतवर, शाक्तिशाली।

उशिगसि कविरंघारिरसि बम्भारिरवस्यूरसि दुवस्वांछुन्ध्यूरसि मार्जालीयः। सम्राडसि कृशानुः परिषद्योऽसि पवमानो नभोऽसि पतक्वा मृष्टोऽसि हव्यसूदनऽऋतधामासि स्वर्ज्योतिः ।।32।।

हे श्रेष्ठ मानव तुम (उशिक् असि) सब जीवों का भला चाहने वाले हो (कविः) ज्ञान के भण्डार (अङ्घारिः असि) पाप कर्मो के शत्रु हो (बम्भारिः) परम सत्य और परम तत्व की चाह रखने वाले (अवस्यूः असि) उसी तत्व को देकर संसार का भला करने वाले (दुवस्वान्) प्रभु तक ले जाने वाले (शुन्ध्यूः असि) पवित्र हो (मार्जालीयः) पवित्र करने वाले हो (सम्राट असि) महान हो (कृशानुः) दुर्बलों के मददगार (परिषद्यः असि) सभी ओर से सर्वोत्तम (पवमानः) लोगों के जीवनों को

संवारने वाले (नमः असि) सबको संरक्षण देने वाले (प्रतक्वा) उन्नति के पथ पर ले जाने वाले (मृष्टोअसि-मृष तितिक्षायाम्) सहनशील (हव्य सूदनः) उदार हृदय - दानशील (ऋतधामा असि) नियम को पालन करने वाले (स्वः ज्योतिः) अपने आप में ज्योतिर्मान।।

बम्भर= भौंरा, मधुमक्खी, तत्व को पाने की चाहत रखने वाला।

समुद्रोऽसि विश्वव्यचाऽअजोऽस्येक पादहिरसि बुध्न्यो वागस्यैन्द्रमसि सदोऽस्यृतस्य द्वारौ मा मा संताप्तमध्वनामध्वपते प्र मा तिर स्वस्ति मेऽस्मिन् पथि देवयाने भूयात् ।।33।।

परम प्रभु मैं (समुद्रः असि) गहरा हूँ, अपनी विशालता में बहुत कुछ समाए हुए (विश्व व्यचाः) सारे विश्व में मेरा यश फैला हुआ है, (अजो असि-अज गति क्षेपणयोः) सारी बुराईयों को तेजी से दूर करने वाला हूँ, (एकपात्) संसार के प्रलोभनों से ऊपर उठा (अहिः असि) सारी विद्याओं में पारंगत हूँ (बुध्न्यः) विवेकशील, (वाक् असि) ज्ञानी हूँ, (ऐन्द्रम असि) प्रभु मय हूँ (सद्ः असि) सदाचारी हूँ (ऋतस्य द्वारौ) यम नियम के दोनों द्वार (मा मा सन्ताप्तम्) मेरे लिए बन्द ना हों (अध्वनाम्) उत्तम मार्ग पर चलने वाला (अध्वपते) हे रक्षक प्रभो (प्रमा) पार लगाऐं मुझे (तिर) सारी बाधाओं से (स्वस्ति मे) कल्याण हो मेरा (अस्मिन पथि) मेरे उस रास्ते पर चलते हुए जो (देवयाने भूयात्) परम प्रभु तक ले जाता है।।

व्यच् = ठगना, चाल चलना, चतुराई

मित्रस्य मा चक्षुषेक्षध्वमग्नयः सगराः सगरा स्थ सगरेण

नाम्ना रौद्रेणानीकेन पात माग्नयः पिपृत माग्नयो गोपायत मा नमो वोऽस्तु मा मा हिꣳसिष्ट ।।34।।

(मित्रस्य) मित्र की तरह (मा) मुझे (चक्षुषा इक्षध्वम्) आखों में बसा लो (अग्नयः) हे परम पिता, (सगराः सगरा स्थ) ताकि मैं आकाश से भी विशाल हो जाऊँ (सगरेण नाम्ना) सबको अपने में समेटे हुए कहलाऊँ - वसुधैव कुटुम्बकम् वाला (रौद्रेण अनीकेन) दुष्ट लोग मेरी इस शक्ति से घबरा जाऐं (पात मा अग्नयः) मुझे झुकने ना देना प्रभु (पिपृत मा) मेरी सहायता करते रहना (अग्नयः) हे प्रभु (गोपायत मा) मेरी रक्षा आपके हाथ है (नमः वः अस्तु) मेरी प्रार्थना आप स्वीकार करें (मा मा हिंसिष्ट) परन्तु प्रभु मैं किसी के साथ भी हिंसा ना करुँ - अन्याय ना करुँ।।

ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवानाꣳ समित्। त्वꣳ सोमतनूकृदभ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्यऽउरु यन्तासि वरूथꣳ स्वाहा। जुषाणोऽअप्तुराज्यस्य वेतु स्वाहा ।।35।।

हे वसु तू (ज्योतिः असि) तेजस्वी है (विश्व रूपं) सारे संसार का प्रतिरूप (विश्वेषां) पूर्णरूप से (देवानाम् समित) प्रभु का परखा हुआ (त्वम् सोम) तू अमृत समान जीवन दायी है (तनू कृदभ्यः) इंसान को तोड़ने वाले (द्वेषोभ्यः) द्वेषों - काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ, मत्सर, (अन्य कृतेभ्यः) जो अन्य लोग करते है उनको (उरु) निश्चय से (यन्ता असि) रोकने वाला है उनको राह दिखाने वाला है, (वरुथम्) सहायक है (स्वाहा) निस्वार्थ रूप से (जुषाणः) सुख-शान्ति और सन्मार्ग पर लाने वाले (अप्तुः आज्यस्य) इन भटके हुओं को सन्मार्ग पर (वेतु) ला

(स्वाहा) निस्वार्थ भाव से।।

समित = अच्छी तरह प्रकाशित।

अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम।।36।।

(अग्ने) राह दिखाने वाले प्रभुवर (नय) ले चलो (सुपथा) हमें सर्वोत्तम रास्तों पर, (राये अस्मान) हमारा कमाया हुआ जो धन हो (विश्वानि) संसार में (देव वयुनानि विद्वान) उत्तम श्रेष्ठ ज्ञान के प्रसार में और विद्वानों के हित में काम आए (युयोधि) दूर कीजिए (अस्मत्) हमारी (जुहुराणम्) कुटिलता और (एनं) पाप की भावनाऐं (भूयिष्ठाम्) अनेक अनेक बार (ते) आपको (नमः उक्तिम् विधेम) हमारा प्रणाम् हो।।

रायः = धन। वयुनम् = (वय+उनन्) ज्ञान, बुद्धिमत्ता, प्रत्यक्ष ज्ञान की शक्ति।

अयं नोऽअग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुरऽएतु प्रभिन्दन्। अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावयꣳ शत्रुञ्जयतु जर्हृषाणः स्वाहा।।37।।

(अयं) यह (नः) हमारी (अग्निः) ऊर्जा शक्ति और धन (वरिवः) अच्छे कार्यों में (कृणातु) लगे, (अयं) इस (मृधः) मिट्टी की खुशबू-हमारे अच्छे कर्मो का फल (पुरः एतु) गाँव-गाँव, शहर-शहर में अपनी सुगन्ध (प्रभिन्दन्) फैला दे।

(अयं) इन (वाजान् जयतु) वासनाओं-उत्तेजनाओं को जीत कर, (वाजसातौ) आत्मसंयमी बना (अयं) इन (शत्रून) शत्रुओ- काम, क्रोध, मद, मोह, लोभ और मत्सर, को (जयतु) जीत लूँ (जर्हृषाणः स्वाहा) और सब के कल्याण हेतु आनन्द देने वाला बनूँ।।

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि। घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञ पतिं तिर स्वाहा ।।38।।

(उरु) विस्तृत हों (विष्णो) लोगों को सहायता देने की, उनका रक्षण करने की तेरी भावनाऐं (विक्रमः) तेरी शक्ति, शौर्य (उरु) प्रचुर हो (क्षयाय नः कृधि) ताकि बड़े से बड़ा नुकसान तुम को बर्बाद न कर सके। (घृतं) तत्व-उत्तमोत्तम बातों को (घृतयोने) उत्तम योनिवाले इंसान (पिब) ग्रहण कर (प्रप्र) श्रेष्ठता को आगे बढ़ा (यज्ञपतिं) हे कल्याणकारी जन (तिर स्वाहा) सभी के भले के हेतु।।

देव सवितरेष ते सोमस्तꣳ रक्षस्व मा त्वा दभन्। एतत्त्वं देव सोम देवो देवां२ऽउपागाऽइदमहं मनुष्यान्त्सह रायस्पोषेण स्वाहा निर्वरुणस्य पाशान्मुच्ये ।।39।।

(देव सवितः) सबके जनक परम प्रभु (एषः ते) यह तेरी (सोमः) संसार को सुख और शन्ति देने की भावना को (तं रक्षस्व) बनाए रखना चाहते हैं (मा त्वा दमन) तू इनको समाप्त न होने देना (एतत् त्वम्) यह तुझे भी (देव सोम) परम सुख देगी (देवः देवान्) वह सुख जो पवित्रात्माओं के लिए होता है।

(उपागा इदं अहम्) यह मै वहाँ हूँ- उनके निकट हूँ (मनुष्यान्)

जो मनुष्यों को (सह रायः पोषेण) इस धन से भर देते हैं (स्वाहा) सबके कल्याण हेतु (निः वरुणस्य) मृत्यु के भय से बाहर हो जाते हैं (पाशात् निर्मुच्ये) उनके सारे बन्धन टूट जाते हैं- बन्धनों से मुक्ति पा जाते हैं।।

नि = संज्ञा अथवा क्रिया के पूर्व उपसर्ग लगाने से अर्थ हो जाता है तीव्रता से, निः श्वासः साँस का बाहर निकलना; निःसरणम् = बाहर जाना।

अग्ने व्रतपास्त्वे व्रतपा या तव तनूर्मय्यभूदेषा सा त्वयि यो मम तनूस्त्वय्यभूदियᳪं सा मयि। यथायथंनौ व्रतपते व्रतान्यनु मे दीक्षांदीक्षापतिरमᳪंस्तानु तपस्तपस्पतिः ।।40।।

(अग्ने) हे ऊर्जावान मानव (व्रतपाः ते) तू दृढ़ प्रतिज्ञ है- उत्तम, उत्तम कर्मों को निष्ठा से पूरा करने वाला है (व्रतपा) इन व्रतों का पालन कर (या तव तनूः) यह तेरा जो अस्तित्व है, विचार हैं (मयि अभूत) मुझमें भी वही हैं (एषा सा त्वयि) यह तेरा जो आधार है (या मम तनूः) मेरा भी तो वही आधार है (त्वयि अभूत) तुझमें जो कुछ होता है (उ) और (इयं सा मयि) मुझमें भी वही होता है- अर्थात् तू- मैं और मैं-तू में एकाकार हो चुके हैं। (यथा यथं नौ व्रतपते) व्रतो के पालन करने वाले ठीक ठाक तरह से (व्रतानि अनु) व्रतों का पालन करते रहना (में दीक्षाम्) मेरी शिक्षाओं का मान रखने वाले (दीक्षापति) हे ज्ञानी (इयं स्थ अनु) इन पर कायम रहना (तपः तपः पति) कुन्दन बनने वाले तभी तू कुन्दन बनेगा।

उरु विष्णो विक्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि। घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ।।41।।

(उरु) भरी हुई हों (विष्णो) परोपकार की भावनाऐं तुझमें (विक्रमः) तेरा पराक्रम(उरु) अक्षुण्ण हो (क्षयाय नः कृधि) ताकि बड़े से बड़ा दुश्मन बर्बाद न कर सके। (घृतं) अपनी कमियों को, दोषों को (घृतयोने) उत्तम योनिवाले इंसान (पिब) दूर करके (प्रप्र) श्रेष्ठतम हो जा (यज्ञपतिं) हे कल्याणकारी जन (तिर स्वाहा) सभी के भले के हेतु।।

अत्यन्यां२ऽअगां नान्यां२ऽउपागामर्वाक त्वा परेभ्योऽविदं परोऽवरेभ्यः। तं त्वा जुषामहे देव वनस्पते देवयज्यायै देवास्त्वा देवयज्यायै जुषन्तां विष्णवे त्वा। ओषधे त्रास्यव स्वधिते मैनꣳ हिꣳसीः ।।42।।

(अति अन्याम् अगाम्) औरों से बहुत आगे निकल जाता है (न अन्याम्) जो दूसरों को नहीं (उपागाम्) प्राप्त होता है, (अर्वाक) अन्दर से (त्वा) तुझे (परेभ्यः-उत्तमेभ्यः) श्रेष्ठ (अविदम्) मैने जाना है, (परः अवरेभ्यः) कहीं अधिक आगे है उन धुरन्धर आचार्यो से भी।

(तं त्वा) तेरे इन्ही गुणों के लिए तुझे (जुषामहे) चाहता हूँ-तुझसे प्रीति करता हूँ, (देव वनस्पते) निस्वार्थ रूप से निरंतर देने वाले दानी (देव यज्ञायै) उत्तम कर्मो के द्वारा (देवाः त्वा) तू श्रेष्ठ है (देव यज्ञायै) उत्तम कर्मो से (जुषन्ताम्) वन्दनीय है (विष्णवे त्वा) मददगारो में तू।

(औषधे) कष्ट हरने वालों में (त्रायस्व) इन्हे बचा, इनकी सेवा कर (स्वधिते) अपनों को बचाने वाले (मा एनम् हिसीः) इनको कष्ट ना होने दे, इनकी हत्या ना होने दे।।

द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं मा हिꣳसीः पृथिव्या संभव। अयꣳ

हि त्वा स्वधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते सौभगाय। अतस्त्वं देव वनस्पते शतवल्शो विरोह सहस्त्र वल्शा वि वयॐरुहेम ।।43।।

हे श्रेष्ठ मानव (द्याम्) उत्तम आदर्शो-उच्च विचारों को (मा लेखीः) दूर ना होने देना (अन्तरिक्षम् मा हिंसीः) हृदयाकाश को कठोर मत करना (पृथिव्याः सम्भव) उदारता बनाऐ रखना।

(अयं हि) निश्चय से यही (त्वा) तेरा (स्वधितिः) अपनत्व (तेतिजानः) तुझे ऊपर ले जाऐगा (प्रणिनाय) आत्मोन्नति के लिए (महते) बेहद (सौभगाय) सौभाग्य के लिए है।

(अतः त्वं) मेरे आशीश से तू (देव वनस्पते) निरन्तर निस्वार्थ रूप से देने वाला (शतवल्शो) सैकड़ों गुना (विरोह) बढ़े (सहस्रवल्शा) हजारों गुना (विवयं अरुहेम) हम सभी अलग-अलग उन्नति करते रहें।।

लेखक का जीवन परिचय

डा० (कर्नल) ज्ञान चन्द्र का जन्म आगरा के सम्भ्रान्त परिवार में 24 अप्रैल सन् 1940 को हुआ। इनके पिता स्व० पं० सत्येन्द्र नाथ वैद्यराज, आयुर्वेदाचार्य, आयुर्वेद शिरोमणि गुरुकुल वृन्दावन के स्नातक थे। जिनकी विद्वत्ता के कारण उनको महाराणा उदयपुर और महाराज जयपुर ने स्वर्ण पदकों एवं पीत वस्त्रों से अलंकृत करके सम्मानित किया था। आचार्य जी ने आगरा को अपनी कर्मस्थली चुना और आजीवन यहीं अपनी सेवाऐं प्रदान कीं। इनका विवाह बरेली के सम्भ्रान्त आर्य परिवार की विदुषी स्व० सुमित्रा देवी से हुआ। इनके तीन पुत्र सतीश चन्द्र, ज्ञान चन्द्र और उमेश चन्द्र एवं दो पुत्रियाँ सरला और सुमन हुई।

डा० (कर्नल) ज्ञान चन्द्र ने अपनी स्कूली शिक्षा के बाद चार वर्ष तक गुरुदेव आचार्य पं० ब्रह्मानन्द दीक्षित, स्नातक गुरुकुल कांगड़ी और पूज्य पिताजी के श्री चरणों में बैठ कर संस्कृत और आयुर्वेद का अध्ययन किया और वैद्य विशारद तथा आयुर्वेद रत्न की उपाधियाँ प्राप्त कीं।

तदुपरान्त आपने आगरा के प्रतिष्ठित सरोजिनी नायडू मैडीकल कॉलेज से एम.बी.बी. एस की स्नातक डिग्री प्राप्त की। 1965 के भारत-पाक युद्ध के दौरान देश सेवा के हित में ये सशस्त्र सैन्य चिकित्सा कोर में शामिल हो गए। सेवा के दौरान आपने देश के अत्यन्त कठिन सीमान्त इलाकों में 5 वर्ष तक कार्य करते हुए विभिन्न धार्मिक एवं सांस्कृतिक अनुभव प्राप्त किए। सन् 1971 के बांग्लादेश मुक्ति युद्ध में भाग लिया। कार्यरत रहते हुए आपने पूना यूनीवर्सिटी से डी.सी.एच. तथा आर्म्ड फोर्सेस मैडीकल कालेज से सैन्य कोर की ए.एम.सी (Paed) तथा जबलपुर यूनीवर्सिटी से एम.डी. (Paediatrics) की उपाधियाँ प्राप्त कीं। शिशु, बाल एवं किशोर विशेषज्ञ के रूप में आपने आर्मी हास्पिटल (RR Hosp) दिल्ली मिलिट्री हास्पिटल आगरा और शिलोंग में कार्य किया। बाद के वर्षो में सीनियर कमाण्ड कोर्स करके चार मिलिट्री अस्पतालों-सूरतगढ़, धर्मशाला, फीरोजपुर और नसीराबाद (अजमेर एवं जैसलमेर) की कमान सम्हाली। साथ ही इन शहरों के कैन्टून मेंट के SMO, SEMO रहे। इस दौरान सेना के उच्च अधिकारियों के लिए शान्ति एवं युद्ध काल के चिकित्सा सम्बन्धी एडवाइजर रहे।

डा० (कर्नल) ज्ञान चन्द्र का विवाह आगरा के ही सम्भ्रान्त आर्य परिचार के स्व० राजबहादुर जी वर्मा की सुपुत्री सुश्री सरोज वर्मा से हुआ। इनके दो पुत्र हैं। बड़े पुत्र श्री विक्रम वर्मा और उनकी पत्नी डा० सीमा पालीवाल उच्च शिक्षा प्राप्त कर अमेरिका में कार्यरत हैं। छोटे पुत्र डा० वरुण वर्मा और उनकी पत्नी डा० विनीता गोयल दिल्ली के शीर्ष अस्पतालों में विषेषज्ञ हैं।

डा० (कर्नल) ज्ञान चन्द्र ने 32 साल सेना में सेवाऐं देने के उपरान्त आगरा को ही अपनी कार्यस्थली बनाया जहाँ वे जनहित के कल्याण कार्यो में लगे हुए हैं।



1932



1958



1966